श्री रामरतनाट

मोनक शारदा जायसवाल

सूर्य-नमस्कार

अथवा

वास्थ्य, सामर्थ्य, तथा दीर्घायु प्राप्ति के लिए सर्वोत्तम
व्यायाम-पद्धति

[आँध-राज्य के चीफ़, स्वनाम धन्य, श्रीमंत बालासाहब पंत प्रतिनिधि जी की 'सूर्य-नमस्कार' नाम की अँग्रेज़ी पुस्तक का हिन्दी-रूपान्तर]

अनुवादक

पं० भगवती प्रसाद पाराडे, बी० ए०

[सहकारी सम्पादक, 'भारत,' भूतपूर्व सम्पादक, 'स्वराज,' 'किसानोपकारक' तथा 'मुफ़ीदुलमज़ारईन']

द्वितीय संस्करण
१०००

सन् १९३० ई०

मूल्य १)

ALLAHABAD :

Printed and published by Krishna Ram Mehta at the Leader Press



औंध-राज्य के चीफ़, श्रीयुत बालासाहब पंत, प्रतिनिधि

प्रकाशक का वक्तव्य

हमें यह निश्चय है कि ऐसे समय में, जब शारीरिक व्यायाम की ओर इस देश में अधिक ध्यान दिया जा रहा है, औंध-राज्य के चीफ़ साहब की लिखी हुई तत्सम्बन्धी मूल्यवान पुस्तक, 'सूर्य-नमस्कार' का, जिसका यह हिन्दी-अनुवाद है, ख़ूब प्रचार होगा। यह पुस्तक सब से पहले मराठी भाषा में प्रकाशित हुई थी। उसके बाद जब उसकी देश में अधिक मांग बढ़ी, तब वह अँग्रेज़ी में प्रकाशित की गई। हम औंध-राज्य के देश-भक्त चीफ़ साहब के बड़े आभारी हैं कि उन्होंने हमें इस पुस्तक का हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित करने की अनुमति दे दी है। आपने हमें इस पुस्तक के व्यायाम सम्बन्धी सब ब्लाक भेजने की भी कृपा की है, जिसके लिए हम आपको धन्यवाद देते हैं।

यह पुस्तक चीफ़ साहब की कोई मौलिक रचना नहीं है, बल्कि इसमें जिस व्यायाम-पद्धति का वर्णन है, वह बहुत पुरानी है। चीफ़ साहब ने इसका स्वयं अभ्यास किया है और इसके गुणों का अनुभव किया है। आपने इस पद्धति के सिद्धान्तों का बहुत स्पष्ट और प्रभावशाली विवेचन किया है। इसका मुख्य अंग यह है कि इसमें कुछ वैदिक और बीज-मंत्रों का उच्चारण करना होता है। हमारे प्राचीन ऋषियों ने शारीरिक और आत्मिक स्वास्थ्य के महत्व-पूर्ण सम्बन्ध का अनुभव किया था। वे जानते थे कि मन का शरीर पर प्रभाव पड़ता है। इसके अलावा शरीर के आन्तरिक अंगों पर, जिनका संचालन किसी प्रकार की ऐसी व्यायाम-पद्धति से नहीं हो सकता है, जो केवल शरीर

के विकास के लिए है, प्राणायाम और शब्द का जो प्रभाव पड़ता है, उसका उनको अद्भुत ज्ञान प्राप्त था। व्यायाम सम्बन्धी पश्चिमी पद्धतियां इसलिए पिछड़ी हुई हैं, क्योंकि वे मनुष्य की मानसिक, धार्मिक तथा आत्मिक पहलुओं की उपेक्षा करती हैं और उसके केवल शारीरिक-विकास ही पर ज़ोर देती हैं। परन्तु अब योरप के स्वास्थ्य के कुछ खोजियों ने भी उन गहन सिद्धान्तों का पता लगा लिया है, जिनका आधार हम हिन्दुओं का मंत्र-शास्त्र है। इस पुस्तक के लेखक ने इसके आठवें प्रकरण में एक योरपीय विद्वान का तत्सम्बधी अनुभव भी दिया है, जिसके पढ़ने से अविश्वासियों को भी इस व्यायाम-पद्धति में विश्वास उत्पन्न हो जायगा। इंगलैंड के एक प्रसिद्ध हैल्थ आफ़ीसर डाक्टर चार्लस एस० टोमसन ने 'डेली टैलीग्राफ़' नाम के एक पत्र में अपने एक लेख में यह लिखा था—

"मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए, जिसके साथ शारीरिक स्वास्थ्य का भी सम्बन्ध है, किसी धर्म अथवा तत्वदर्शन का अवलम्बन लेना आवश्यक है।" इसके आगे वे कहते हैं, "शिक्षा का उद्देश्य यह होना चाहिए कि अपने भावों पर अधिकार हो जाय और उनको अध्यात्मिक रूप में प्रकट करने की योग्यता बढ़ जाय। यह स्मरण रहे कि मानसिक कार्य की अधिकता ही से स्वास्थ्य नहीं बिगड़ता है, बल्कि स्वास्थ्य उस समय खराब होता है, जब मानसिक कार्य की अधिकता के साथ साथ हमारे भावों पर भी असह्य दबाव पड़ता है।" इस बात को सब जानते हैं कि प्रचंड भावों का शरीर के उन आन्तरिक अंगों के स्वाभाविक संचालन पर असर पड़ता है, जो स्वास्थ्य-प्राप्ति के लिए लाभकारी हैं। इसलिए, यह साफ़ जाहिर है कि मन और शरीर, दोनों का व्यायाम ही स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है और रोग के

लिए वाधक है। औंध-राज्य के चीफ़ साहब अपने १७ साल के अनुभव के आधार पर इस पुस्तक में लिखते हैं, "हम सूर्य-नमस्कारों को वीज तथा और वेद-मंत्रों के साथ प्रतिदिन नियमानुकूल करते आरहे हैं, जिसका फल यह हुआ है कि हमारा शरीर और दिमाग़ वहुत हलका हो गया है और हमको युवावस्था का सा अनुभव होने लगा है। परन्तु सब से वड़ा लाभ इन नमस्कारों से हमें यह हुआ है कि हम गत १७ वर्ष से ज्वरादि रोगों का तो नाम ही क्या, ज़ुकाम और खांसी से भी पीड़ित नहीं हुए हैं। हम में अच्छा सामर्थ्य है, जिसका अति आश्चर्य-जनक प्रमाण यह है कि यद्यपि हमारे प्लेग का चार बार टीका लग चुका है, परन्तु हमें न तो कभी ज्वर आया और न हमें कभी ऐसी पीड़ा अनुभव हुई है, जिसके कारण हमने अपने दैनिक सूर्य-नमस्कार के व्यायाम को छोड़ दिया हो। हमें इन गत १७ वर्ष के अनुभव तथा अध्ययन ने यह कहने के लिए अधिकारी बना दिया है कि सूर्य-नमस्कार अन्य सब व्यायाम-शैलियों में इस बात में वढ़ कर है कि यह उस शारीरिक पुरुषार्थ, मानसिक बल तथा सहिष्णुता को, जो कठिन से कठिन परिस्थिति में भी विचलित नहीं हो सकती है, बढ़ाता है।"

यह हिन्दी-अनुवाद हमने इस आशय और आशा से प्रकाशित किया है कि इस वैज्ञानिक व्यायाम-पद्धति की जानकारी, जिसका अनुशीलन करने से मन और शरीर, दोनों का विकास होता है, हिन्दी जानने वाली जनता को भी हो जाय। यह पुस्तक स्वास्थ्य, सामर्थ्य तथा दीर्घायु का रास्ता दिखलाती है। इसमें भोजन-व्यसन सम्बन्धी अनेक लाभकारी उपदेश भी हैं, जो पालन करने योग्य हैं।

—कृष्ण राम मेहता

हमारा निवेदन

हमने जब प्रयाग के अंग्रेज़ी दैनिक पत्र, 'लीडर' में सूर्य-नमस्कार नाम की एक अंग्रेज़ी पुस्तक की प्रभावशाली आलोचना पढ़ी, तब हमारी इच्छा उसको मंगाकर पढ़ने की हुई। हमने उसी दिन एक पत्र औंध-राज्य के चीफ़ (राजा) के नाम, जो इसके श्रद्धेय लेखक हैं, इसकी एक प्रति वी० पी० द्वारा भेजने के लिए लिख दिया। हमारे इस पत्र के लिखने के क़रीब दस दिन के अन्दर ही हमें यह पुस्तक प्राप्त होगई। हमने बड़े ध्यान और श्रद्धा से इस पुस्तक को आदि से अन्त तक पढ़ा। इसको पढ़कर, वास्तव में, हमें बड़ी प्रसन्नता हुई और इसके अति महत्व-पूर्ण तथा लाभ-कारी विषय को देख कर हमने एक पत्र उपरोक्त चीफ़ साहब की सेवा में और भी भेजा, जिसमें हमने अपने सब निकट सम्बन्धियों तथा कुछ मित्रों के पते इस आशय से लिख दिये कि इन पतों से वी० पी० द्वारा 'सूर्य-नमस्कार' की प्रतियां भेज दी जायँ। दूसरे हमने इस पत्र में चीफ़ साहब को इस अति उपयोगी पुस्तक को जनता के सम्मुख उपस्थित करने के लिए बधाई दी तथा उसमें हमने अपनी यह इच्छा भी प्रकट की कि यदि हमें इस पुस्तक को हिन्दी-भाषा-भाषियों के हितार्थ, जो हमारे देश में अन्य सब भाषा-भाषियों से अति अधिक संख्या में हैं, अपनी मातृ-भाषा तथा राष्ट्र-भाषा, हिन्दी में प्रस्तुत करने के लिए स्वीकृति दे दी जाय, तो देश के बहु-संख्यक भाई-बहिनों का बड़ा उपकार हो। इस पत्र के उत्तर में चीफ़ साहब ने बड़ी प्रसन्नता-पूर्वक इस पुस्तक का हिन्दी-अनुवाद करने की हमारी प्रबल इच्छा को कार्यरूप में प्रकट होने

के लिए शीघ्र अपनी अमूल्य अनुमति लिख भेजी। हमने भी "शुभस्य शीघ्रम्" दत्त-चित्त होकर इस अनुवाद-कार्य को समाप्त कर दिया। बस, इस प्रकार इस पुस्तक का यह हिन्दी-रूपान्तर आपके सन्मुख उपस्थित हुआ है।

परन्तु अभी हमें दो शब्द इस सम्बन्ध में अवश्य लिखने हैं कि हम इस पुस्तक का हिन्दी-अनुवाद करने के लिए क्यों सन्नद्ध हुए ? इस प्रश्न के उत्तर में हमें अपने पाठकों से सहसा यह कह देना है—जैसा हमने इस पुस्तक के मुख्य नाम के नीचे इसके उपनाम-संस्कार करने का भी साहस किया है—कि यह व्यायाम सम्बन्धी एक 'सर्वोत्तम पुस्तक' है। हमने इसको यह 'सर्वोत्तम' विशेषण देने का साहस अपने व्यायाम-सम्बन्धी बड़े अनुभव के आधार तथा इस पुस्तक के आलोचनात्मक अध्ययन तथा मनन के बल ही पर किया है। हमने स्वयं अनेक प्रकार की व्यायाम-पद्धतियों का अध्ययन तथा अनुशीलन किया है और तत्सम्बन्धी प्रचुर साहित्य का अवलोकन भी किया है। हमने जिन सुप्रसिद्ध व्यायाम-विशारदों की पद्धतियों का अनुसरण किया है, उनमें से कुछ के नाम यहाँ अवश्य उल्लेखनीय हैं—(१) प्रोफ़ैसर राम मूर्ति, (२) प्रोफ़ैसर सी० आर० डी० नायडू, (३) प्रोफ़ैसर सैंडो और (४) प्रोफ़ैसर जे० पी० मुलर। इन सब की व्यायाम-पद्धतियों के सिद्धान्त तथा कार्य-क्रम की जब हम सूर्य नमस्कार व्यायाम-पद्धति से तुलना करते हैं, तब यह इन सब से अधिक वैज्ञानिक, सर्व-प्रिय तथा पूर्ण ज्ञात होती है। हमने इस पुस्तक का केवल अक्षर-ज्ञान ही प्राप्त नहीं किया है, किन्तु हमने इसको स्वयं करके देख भी लिया है और आजकल हम प्रयाग के बाई-के-बाग़ मुहल्ले में, जहाँ पर हम रहते हैं, कुछ स्कूल, कालिज के विद्यार्थियों के साथ इसका अभ्यास भी कर रहे हैं।

इसका मंत्र-भाग इसका मुख्य अंग है। इसको जो स्त्री-पुरुष विना मंत्र-प्रयोग के करेंगे, उनके शरीर केवल ऐसे बनेंगे जैसे विना सुगंध के पुष्प। मनोबल अथवा विचार-बल, भोजन-व्यसन तथा उपवास का इसमें जो विधान है, वह शरीर रूपी पुष्प की सुन्दरता का उत्पादक है। यह पद्धति शरीर के वाह्य तथा आन्तरिक, दोनों अंगों को स्वस्थ, सबल तथा सुन्दर बनाती है। यह लड़का-लड़की, स्त्री-पुरुष, युवा-वृद्ध, सबल-दुर्बल तथा राउ-रंक, सभी के लिए उपयुक्त तथा उपयोगी है। इसको आठ वर्ष की वाल्यावस्था से सौ वर्ष की आयु तक किया जा सकता है। इसके करने के लिए किसी विशेष तैयारी की आवश्यकता नहीं है—न किसी साज-सामान की आवश्यकता है, न किसी संगी-साथी की आवश्यकता है और न इसके लिए एक पाई तक व्यय करने की आवश्यकता है। "हर्रा लगे न फिटकरी, रंग अच्छा ही अच्छा," यह इसका आर्थिक दृष्टि से महत्व है। यह अकेले भी की जा सकती है और सैकड़ों के साथ भी। संक्षेप में यह बलवानों का बल, विद्वानों की वुद्धि, वैद्यों की चिकित्सा, ज्ञानियों का ज्ञान, धर्मात्मा का धर्म तथा योगियों का योग है। हमारे इन वचनों को पढ़ कर शायद पाठक लोग हमारे ऊपर अत्युक्ति-दोष को आरोपित करेंगे। परन्तु हम यह कहने का फिर दुस्साहस करते हैं कि यह सब यथार्थ है। 'हाथ कंगन को आर्सी क्या ?' इसको स्वयं कीजिए। आपको यह सब प्रकट हो जायगा। यदि किसी को इस वाक्य, 'धर्मार्थ-काममोक्षाणामारोग्यं मूलकारणम्' की यथार्थता का साक्षात करना है, तो उसको 'सूर्य-नमस्कार' का विधि-पूर्वक अनुगमन अवश्य करना चाहिए।

इस पुस्तक का सबसे कठिन तथा महत्व-पूर्ण अंग, 'शरीर-रचना' तथा 'शरीर-विज्ञान' का प्रसंग है। यह स्मरण रखना

भूमिका

यह बड़े दुख की बात है कि हमारे देश के निवासी अति अधिक संख्या में दुर्बल और रोगी हैं और वे शायद ही कभी स्वस्थ अवस्था में रहते हैं। स्वास्थ्य-प्राप्ति के लिए कोई विशेष प्रकार की औषधि नहीं है। यह किसी दूसरे मनुष्य की सहायता के द्वारा प्राप्त नहीं हो सकता। यह तो जीवन में कठिन संयम तथा नियमों के पालन करने ही से प्राप्त और संचित होता है। इसलिए, हमको स्वास्थ्य, सामर्थ्य तथा दीर्घायु की प्राप्ति के लिए स्वास्थ्य-सम्बन्धी हिताहित का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है।

हमको अपने बहुत समय के विचार तथा अनुभव से यह विश्वास हो गया है कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष को बलवान तथा स्वस्थ बनने और रहने के लिए किसी प्रकार के निरन्तर उद्योग की आवश्यकता है।

इसलिए, हमने इस आशय से कि 'वह उद्योग क्या होना चाहिए,' उन लोगों के लिए जो स्वास्थ्य-प्राप्ति के अति उत्सुक खोजी हैं, 'पुरुषार्थ' नाम की एक मराठी पत्रिका में लेख देने शुरू किये। हमें यह देखकर बड़ा संतोष हुआ कि हमारे उन लेखों को बहुत लोगों ने पसंद किया, और इसके फ़ल-स्वरूप सन् १९२४ ई० में उक्त पत्रिका के सम्पादक महोदय ने उन सब लेखों को एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित कर दिया।

अब इस पुस्तक द्वारा हमारी सूर्य-नमस्कार करने की विधि में जो वैज्ञानिक तथा महत्व-पूर्ण सिद्धान्त हैं, उनके सम्बन्ध में पाठकों का यह विचार निश्चय होगया है कि ये सिद्धान्त शरीर के बहुत

से आवश्यक अंगों को अपने स्वाभाविक रूप से काम करने में प्रवृत्त करते हैं और ये केवल पुट्ठों के बल ही को नहीं बढ़ाते, किन्तु शरीर को पूर्ण-रूप से स्वस्थ भी रखते हैं। इस पुस्तक की इतनी बिक्री हुई कि बहुत थोड़े ही समय में इसके तीन संस्करण निकल गये।

इस पुस्तक को अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित करने के लिए उन प्रान्तों से, जहाँ मराठी भाषा का प्रचार नहीं है, बहुत से पत्र हमारे पास आये। इसलिए, हमको इन दूर-दूर से आये हुए पत्रों के भेजने वालों की उत्सुकता को देखकर इस पुस्तक को अंग्रेजी भाषा में भी प्रकाशित करना पड़ा।

इस पुस्तक के अंग्रेजी संस्करण में, जिसका यह हिन्दी-रूपांतर है, 'भोजन और व्यसन' के सम्बन्ध में एक नया प्रकरण भी जोड़ दिया गया है। और इसके अतिरिक्त इसमें कुछ और भी महत्वपूर्ण बातें बढ़ा दी गई हैं।

इस पुस्तक की उपयोगिता को और भी अधिक बढ़ाने के अभिप्राय से सब आवश्यक चित्र भी इसमें लगा दिये गये हैं।

हम धारवार के फ़र्स्ट क्लास सब-जज, श्रीयुत बाजीराव जी गुट्टीकर और अपनी रानी साहिबा के अध्यापक, श्रीयुत काशीनाथ जी किर्लोस्कर को, जिन्होंने हमें इस पुस्तक को अंग्रेजी भाषा में उपस्थित करने में बड़ी सहायता दी है, हृदय से धन्यवाद देते हैं। हम श्रीयुत एच० जी० फ़ैक्स को, जो 'टाइम्स आफ़ इंडिया' पत्र के संवाददाता हैं और जिन्होंने अंग्रेजी संस्करण का प्रूफ़-संशोधन किया है, बिना धन्यवाद दिये इस प्रसंग को समाप्त नहीं कर सकते। इसलिए, इनके लिए भी हमारा हार्दिक धन्यवाद है। इनके अतिरिक्त हम उन लेखक, पत्र तथा पत्रिकाओं को भी हृदय से

धन्यवाद देते हैं, जिनका हवाला हमने इस पुस्तक में स्थान-स्थान पर दिया है।

अन्त में हम आशा करते हैं कि पाठक लोग हमारे इस उद्योग के गुण-दोष पर अवश्य विचार करेंगे।

—ग्रंथकर्ता

चित्र-सूची

विषय-सूची

सूर्य-नमस्कार

पहिला प्रकरण

व्यायाम की आवश्यकता तथा उसके मूलतत्व

व्यायाम की आवश्यकता

मनुष्य को स्वास्थ्य, सामर्थ्य तथा दीर्घायु की प्राप्ति के लिए शारीरिक व्यायाम की हर काल आवश्यकता रहती है और अब भी है। आजकल के मनुष्यों के लिए तो यह अनिवार्य ही है, क्योंकि इसके द्वारा वे इस वर्तमान समय के कठिन जीवन-संग्राम में अपनी, अपने सम्प्रदाय तथा अपने देश की रक्षा करने और अपनी आजीविका उपार्जन करने के योग्य हो सकते हैं। व्यायाम जीवन के लिए इतना आवश्यक है, जितना पुष्टिकर भोजन, निर्मल जल, शुद्ध वायु और सूर्य का प्रकाश।

जर्मन देश के वहिष्कृत सम्राट ने इस सम्बन्ध में अपने निम्नांकित विचार प्रकट किये हैं—

"मन और शरीर की पूर्ण शिक्षा की आवश्यकता का प्रचार करना एक बड़ी महत्त्व-पूर्ण बात है। वह विष, जिसको वर्तमान सभ्यता हमारे जीवनों में फैला रही है, इस क़िस्म का है कि जब तक हम उसके विरुद्ध किसी औषधि का प्रयोग न करेंगे, तब तक हम जीवित नहीं रह सकते। इस विष की सर्वोत्तम

विरोधात्मक औषधि बस कोई उपयुक्त व्यायाम-पद्धति ही है"।
['फ़िज़ीकल कलचर' के फ़र्वरी, सन १९२७ ई० के अंक से उद्धृत]

एक यूरुपीय विद्वान् श्रीयुत बरनार मैकफ़ैडन का व्यायाम के सम्बन्ध में यह कहना है—

"बहुत से आदमी अपनी निश्चित आयु से पहिले लगभग पचीस से पचास वर्ष तक की अवस्था ही में मर जाते हैं। इसका कारण यह है कि वे अपने शरीर को पूर्ण जीवित अवस्था में रखने के लिए यथेष्ट मात्रा में व्यायाम नहीं करते।

"कुछ थोड़े से व्यायाम-व्यसनी विद्यार्थियों को छोड़ कर शेष हमारे स्कूल और कालिजों के बहु-संख्यक विद्यार्थी अपने शरीर को सुडौल बनाने के लिए यथेष्ठ मात्रा में व्यायाम नहीं करते।

"यदि आपने अपने शरीर के पुट्ठों को शक्तिशाली नहीं बनाया है, तो आपके जीवन में चैतन्यता नहीं आसकती। क्योंकि शरीर के पूर्ण विकाश के लिए मज़बूत पुट्ठों की ज़रूरत है। और शरीर को सदा बलवान और शक्तिशाली बनाये रखने के लिए आजीवन व्यायाम करने की आवश्यकता है।

"आप अपने जीवन में जिन चीज़ों के संसर्ग तथा सम्पर्क में आते हैं, उनका जो आपके ऊपर प्रभाव पड़ता है वह सदा बढ़ता ही जाता है।

"आपका प्रत्येक दिन का जीवन आपके लिए एक जीवित तथा प्रभावशाली अनुभव है। आपके ऊपर प्रत्येक वस्तु का बड़ा प्रभाव पड़ता है"।

आठ या दस वर्ष तक के क़रीब क़रीब सब बच्चे दौड़-भाग, कूद-फांद तथा घर के भीतर और बाहर के तरह तरह के खेल खेलकर मगन रहते हैं। इनके लिए किसी नियम-बद्ध व्यायाम-पद्धति की आवश्यकता नहीं है. परन्तु जब कि ये दिन में तीन

घंटे सुबह और तीन घंटे शाम अथवा इससे भी अधिक समय तक पढ़ने लगें और इनके बचपन की मोटाई दूर होने लगे, तब इनको, अपने शरीर के विकाश के लिए, कोई नियम-बद्ध व्यायाम प्रतिदिन अवश्य करना चाहिये।

जब तक एक लड़का या लड़की को यह न मालूम हो जाय कि प्रतिदिन व्यायाम करना उसके शारीरिक और मानसिक विकाश, स्वास्थ्य, बल, पौरुष, तथा योग्यता के लिए नितान्त आवश्यक है तब तक माता-पिता तथा घर के अन्य गुरु जनों और स्कूल के अध्यापकों को अपने लड़के-लड़कियों से नियम-पूर्वक व्यायाम का अभ्यास कराना चाहिए।

व्यायाम के महत्त्व-पूर्ण प्रश्न को विद्यार्थियों ही की इच्छा और विचार पर छोड़ना उचित न होगा—विशेष रूप से इस समय, जब कि हमारी भावी संतान हमारे पूर्वजों की अपेक्षा दिन प्रति दिन उत्साह, बल और दीर्घायु में हीन होती चली जाती मालूम होती है। इस समय हमारे लिए यह अति आवश्यक है कि हम इस बढ़ते हुए जातीय-पतन के रोकने के लिए जल्द से जल्द कुछ साधन ग्रहण करें। अब हम को इस सम्बन्ध में तनिक भी लापरवाही न करनी चाहिए।

व्यायाम के मूलतत्व

प्रत्येक मनुष्य को शरीर के उन चार मुख्य अंगों को विकसित करने और बलवान बनाने का प्रयत्न करना चाहिए, जिनके उचित रूप से काम करने पर सम्पूर्ण स्वास्थ्य निर्भर है। यह बात अनुभव द्वारा ज्ञात हो चुकी है कि यदि सूर्य-नमस्कार-व्यायाम को विधि-पूर्वक तथा वैज्ञानिक रूप से किया जाय, तो इससे ये चारों मुख्य अंग पूर्ण रूप से विकसित होते हैं और रोग अथवा

रोग के मूल-कारण का मुक़ाबिला करने के लिए समर्थ होते हैं। ये चार अंग निम्नलिखित हैं—

(१) पेट और अंतड़ियां—अधिकतर मनुष्य पेट और अंतड़ियों के विकारों ही से रोगी होते हैं। इनके मुख्य विकार अजीर्ण (बदहज़मी) और क़ब्ज़ हैं, जिनसे जिगर के रोग, आम-वात, बवासीर और बहु-मूत्र आदि रोग भी उत्पन्न होते हैं।

(२) दिल और फेंफड़े—ज़ुकाम, खांसी, दमा, क्षयीरोग, दिल की धड़कन इत्यादि—ये कुछ रोग दिल और फेंफड़ों के विकार के लक्षण हैं।

(३) दिमाग़—दिमाग़ के विकार के लक्षण सिर-दर्द, पित्त-विकार का सिर-दर्द, आधासीसी और पागलपन आदि रोगों के रूप में प्रकट होते हैं।

(४) रीढ़—धड़ से नीचे का फ़ालिज, हराममग़ज़ की सूजन, हराममग़ज़ का कड़ापन।

हमारे हिन्दुस्तान देश में और देशों की अपेक्षा पागल होने की बीमारी बहुत ही कम है। परन्तु हमारे यहाँ ऐसे मनुष्यों की संख्या बहुत है, जो असमय ही में उपरोक्त पहिले दो विकारों के शिकार बन जाते हैं। और ये विकार विशेष रूप से उन लोगों को अधिक होते हैं जो पढ़े-लिखे कहलाते हैं। यह माना जाता है कि बुरा अथवा अधिक भोजन करना यहाँ की भयंकर मृत्यु-संख्या के अनेक कारणों में से एक कारण है। परन्तु यह भी मानना पड़ेगा कि उपयुक्त शारीरिक व्यायाम का अभाव ही शायद इस मृत्यु-संख्या का प्रधान कारण है। इसलिए, यह बात स्पष्ट है कि अगर किसी को स्वास्थ्य को संचय करना तथा दीर्घायु को प्राप्त करना है, तो उसके लिए सूर्य-नमस्कार जैसी किसी वैज्ञानिक व्यायाम-प्रणाली की बड़ी आवश्यकता है।

दूसरा प्रकरण

अन्य व्यायाम-पद्धतियों की त्रुटियां

यह एक मानी हुई बात है कि हर तरह के खेल में चाहे वह पूर्व देश का हो अथवा पश्चिम देश का, एक अथवा एक से अधिक साथियों की आवश्यकता होती ही है। हिन्दुस्तान के सब से बड़े खेल, कुश्ती लड़ने में भी एक साथी की आवश्यकता होती है। दूसरे बहुत से खेलों में या तो साथियों की या खेल के सामान की जरूरत होती है। मामूली से मामूली व्यायाम में भी कुछ न कुछ सामान की जरूरत पड़ती ही है।

हिन्दुस्तानी मुग्दर के व्यायाम में भी बिना मुग्दर के काम नहीं चल सकता। सवारी के व्यायाम के लिए घोड़े अथवा साइकिल की आवश्यकता पड़ती है। तैरने के लिए जल की आवश्यकता है। पैदल हवा खाने के लिए, यद्यपि किसी सामान अथवा किसी साथी की आवश्यकता नहीं है, परन्तु इसके लिए समय बहुत चाहिए। आठ या दस मील का पैदल चलना साधारणतः दो या ढाई घंटे से कम समय में नहीं हो सकता। और इतना समय तब लगेगा, जब १५ या २० मिनट फी मील की चाल से चला जायगा। इस सब के अलावा जो व्यायाम घर से बाहर होता है, उसके लिए उपयुक्त समय की भी आवश्यकता होती है।

जिस व्यायाम को लगन के साथ किया जावे, उससे शरीर के बाहरी और भीतरी अंगों ही को विकसित न होना चाहिए, किन्तु उससे मानसिक तथा आध्यात्मिक उन्नति भी होनी चाहिए। इस प्रकार के व्यायाम को विश्व-व्यापी तथा सर्व-प्रिय बनाने के लिए किसी साज-सामान की आवश्यकता न होनी चाहिए; ऐसा व्यायाम करने में भी आसान होना चाहिए, इसके करने में समय भी कम लगना चाहिए; और वह इस प्रकार का होना चाहिए कि उसको कोई भी किसी भी स्थान पर कर सके और उसके करने में किसी साथी की भी आवश्यकता न पड़े।

तीसरा प्रकरण

सर्वोत्तम व्यायाम-पद्धति

दूसरे प्रकरण को समस्त त्रुटियों और कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए और अन्य सभो प्रकार की व्यायाम-शैलियों का अति दिवस तक अनुशोलन करने के उपरान्त हमें यह ज्ञात हुआ है कि सूर्य-नमस्कार सर्वोत्तम व्यायाम-पद्धति है। हमने इस व्यायाम से बड़ा लाभ उठाया है। इसलिए, हमारा यह दृढ़ता-पूर्वक कहना है कि आठ वर्ष से अधिक अवस्था के सभी लड़के लड़कियां और प्रौढ़ अवस्था के सभो स्त्री-पुरुषों को इस व्यायाम को नियम-पूर्वक तथा निरन्तर रूप से करना चाहिए।

जिन मनुष्यों के हृदय और फेंफड़े दुर्वल हैं, उनकी तत्सम्बन्धी सब आपत्तियाँ सूर्य-नमस्कार को बीज-मंत्र के साथ उचित रूप से करने से सदा के लिए दूर हो जायंगी और सूर्य नमस्कार से पेट, आँत और स्नायु-केन्द्र भी स्वाभाविक रूप में अपना अपना कार्य करने लगेंगे।

बच्चे, चाहे वे लड़के हों अथवा लड़कियाँ, अपनी आठ वर्ष तक की अवस्था तक साधारणतः इतने चंचल होते हैं कि वे अपने शरीर के समस्त अंगों को पूर्ण स्वस्थावस्था में रखते हैं और उनको उनके स्वभावानुकूल संचालित करते रहते हैं। परन्तु आठ वर्ष की अवस्था के अनन्तर उनको किसी निश्चित तथा नियमित व्यायाम-पद्धति की आवश्यकता होती है। इसके लिए प्रत्येक

मनुष्य को जाति अथवा धर्म का कुछ भी विचार न करके, उनसे सूर्य-नमस्कार व्यायाम कराना चाहिए।

जिन बच्चों की अवस्था आठ से बारह वर्ष की है, उनको प्रतिदिन २५ से ५० तक सूर्य-नमस्कार करना चाहिए और जो लड़के अथवा लड़कियाँ बारह से सोलह वर्ष के हैं, उनको साधारणतः ५० से १५० तक और जो पुरुष अथवा स्त्रियाँ सोलह वर्ष से अधिक अवस्था के हैं, उनको धीरे धीरे बढ़ाकर ३०० सूर्य नमस्कार प्रतिदिन करनी चाहिए। यदि इस शैली का अनुगमन धार्मिक तथा निरन्तर रूप से किया जावे, तो इसको करनेवाला सब प्रकार के ऐसे रोगों से, जो रोके जा सकते हैं, बच सकता है, और जब तक वह इसको करता रहेगा, तब तक वह मन और शरीर से हर प्रकार के कार्य के लिए योग्य बना रहेगा।

कुछ महीनों तक प्रतिदिन एक हजार नमस्कार करना और फिर २५ नमस्कार पर आजाना अथवा उनको बिल्कुल ही त्याग देना, यह नियम वास्तव में हानिकारक है। यह उसी प्रकार मूर्खतापूर्ण तथा भयंकर बात है, जिस प्रकार कि पहिले साधारण रूप से दिन में दो अथवा तीन बार भोजन करना और उसके पश्चात् उसका पूर्णरूप से त्यागन कर देना। जिस प्रकार आहार-विहार के लिए नियम हैं, उसी प्रकार व्यायाम के लिए भी नियम हैं। इसलिए, जो व्यायाम लाभदायक हो, उसको प्रतिदिन समय पर निरन्तर रूप से अपनी शक्ति के अनुकूल करना चाहिए।

इसलिए, मनोवाञ्छित फल की प्राप्ति के लिए सूर्य-नमस्कार को नियमित तथा वैज्ञानिक रूप से करना आवश्यक है। ये नट की कलाबाजियाँ नहीं हैं, प्रत्युत, इनको इस प्रकार करना चाहिए,

जिससे शरीर का क़रीब क़रीब प्रत्येक अंग विकसित और बलवान होवे।

जो शब्द, संसार के प्रसिद्ध व्यायाम शास्त्र के विद्वान श्री जे० पी० मुलर ने अपनी 'माई सिस्टम' नाम की पुस्तक में दिये हैं, उन्हीं को हम यहाँ सूर्य-नमस्कार के सम्बन्ध में भी दुहराना उचित समझते हैं—

"चाहे आप दुर्बल हों अथवा सबल, युवा हों अथवा वृद्ध मेरा आपके लिए यह परामर्श है कि इस व्यायाम को अभी आरम्भ कर दीजिए और कल नहीं, किन्तु आज ही। परन्तु यह ध्यान रहे कि यदि आपको शारीरिक व्यायाम का अभ्यास नहीं है, तो इसको आरम्भ में अधिक न कर बैठिये।

यह नित प्रतिदिन करने की चीज़ है। यदि इसको प्रतिदिन केवल थोड़ा थोड़ा किया जाय, तो इससे बहुत लाभ होगा। इस लिए व्यायाम का करना एक प्रकार की आदत तथा आवश्यकता होजानी चाहिए। सप्ताह में दो बार एक घंटा प्रतिदिन जमनास्टिक कर लेना अथवा सप्ताह के अन्त में एक बार कुछ घंटों तक किसी खेल का खेल लेना आदि व्यायाम, दैनिक व्यायाम के साथ, चाहे कितने ही लाभदायक क्यों न हों, परन्तु ये दैनिक व्यायाम के स्थान पर काम नहीं दे सकते"।

यह हमारा विश्वास है कि जो मनुष्य इस सूर्य-नमस्कार-व्यायाम को हमारे आदेशानुसार करेंगे, उनको अमूल्य फल प्राप्त होगा।

चौथा प्रकरण

सूर्य-नमस्कार करने की विधि

सूर्य-नमस्कार का अर्थ स्वास्थ्य, सामर्थ्य और दीर्घायु के लिये सूर्य की पूजा करना है।

सूर्य-नमस्कार शरीर के इन आठ अंगों से सम्बन्ध रखती है—(१) माथा (२) सीना (३) टांग और पैर (४) बाँह और हाथ (५) घुटने (६) दृष्टि (निगाह) (७) वागेन्द्रिय (बोलने वाली इन्द्रिय) और (८) मन तथा विचार-बल। इस प्रकार की नमस्कार साष्टांग-नमस्कार कहलाती है।

सूर्य-नमस्कार करने की वह प्रतिष्ठित विधि, जिसका अनुशीलन हमारे सुयोग्य पिता, भूतपूर्व चीफ़, रियासत औंध ने किया था, निम्नांकित है। आपने इन नमस्कारों को ५५ वर्ष तक किया था और हम भी इसी विधि के अनुसार इन्हें कर रहे हैं—

सूर्य-नमस्कार करने के लिए केवल ७ फ़ुट लम्बी और २ फ़ुट चौड़ी ऐसी ज़मीन की आवश्यकता है, जिस पर या तो पत्थर का फ़र्श हो रहा हो, या ईंटों का खरंजा, या उसका धरातल इसी प्रकार की किसी और खुरखुरी चीज़ का बना हुआ हो और वह समथल हो। इसको करते समय जितने कम कपड़ा हो सकें, उतने कम कपड़े पहिनना चाहिए। क्योंकि अधिक कपड़े पहिनने से एक तो शरीर के अंगों को स्वतंत्रता-पूर्वक हिलाने-जुलाने में बाधा पड़ेगी और दूसरे त्वचा (खाल) की कोमलता बढ़ जायगी, जिससे बाद को खांसी-जुकाम आदि रोग उत्पन्न होंगे।

सूर्य-नमस्कारों को सूर्योदय से पहिले खाली पेट करना अति उचित है। प्रातःकाल ५ बजे सो कर उठना चाहिए और शौच तथा स्नानादि की नित्य-क्रिया से निवृत होकर, जितने कम हो सकें, उतने कम कपड़े पहिन कर सूर्य-नमस्कार का करना आरम्भ कर देना चाहिए और सूर्योदय होने से पांच मिनट पहिले ही उसको समाप्त कर देना चाहिए, जिससे उस समय निकलते हुए सूर्य्य की किरणों का पान कर लिया जावे। [यदि आप संध्या और प्राणायाम इत्यादि करते हों, तो ये सब सूर्य-नमस्कार करने के उपरान्त ही किये जावें।]

प्रत्येक व्यायाम को केवल इतना करना चाहिए कि यदि उसके करने के पश्चात् क़रीब पांच या दस मिनट तक आराम कर लिया जावे, तो शरीर में नित्य के अपने कर्तव्य को करने के लिए नवीनता और आनन्द आ जावे। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह है कि एक व्यक्ति को अपनी शक्ति के अनुसार व्यायाम करना चाहिए। यह नियम सूर्य-नमस्कार के लिए तो विशेष रूप से लागू है।

पहिली सूरत—२२ वर्ग इंच के एक ऊनी, रेशमी अथवा सूती कपड़े के एक टुकड़े को फ़र्श पर बिछाओ और पूर्व ओर मुख करके खड़े होकर दोनों पैरों को मिलाओ और पैरों के अँगूठों को कपड़े के किनारे से छुआओ। जिस प्रकार हाथ जोड़ते हैं, उसी प्रकार दोनों हाथों को सीने के सामने जोड़ो और एक दूसरे को दबाओ। सीने को फैला दो और पेट को अन्दर ले जाओ। ख़ूब गहरा सांस भरो और भुज-दंडों अथवा बांहों के ऊपरी भाग को कड़ा करो। अपने सामने किसी अपने इष्टदेव अथवा किसी और चिन्ह की ओर देखो। सिर, गर्दन और शरीर को लम्बवत एक सीध में रक्खो।

अपने सन्मुख दीवाल पर सूर्य अथवा अपने इष्टदेव की प्रतिमा अथवा चित्र लटकालो। यदि तुम्हारा कोई इष्टदेव अथवा पूजनीय पदार्थ नहीं है, तो एक मोटे काग़ज़ पर एक तारे अथवा वृत का अच्छा चमकता हुआ रंगीन चित्र बनाकर अपने सामने लटकालो, जिसको देखने से तुम धीरे धीरे एकाग्रचित्त रहने की शक्ति प्राप्त कर लोगे।

दूसरी सूरत—अब सामने झुको और हाथों की हथेलियों को ज़मीन पर रख दो। हाथों की उंगलियाँ एक दूसरे से सटी रहें और माथे को घुटनों से छुआओ अथवा छुआने की कोशिश करो, परन्तु घुटने न मुड़ने पावें। *हाथों को इस प्रकार रक्खा जाय कि वे या तो कपड़े के इधर उधर के दोनों किनारों के समानान्तर हों अथवा अन्दर की ओर २२ अंश का कोण बनावें। कुछ लोगों की राय यह भी है कि वह कोण ४५ अंश का होना चाहिए और कुछ लोग हाथों को इस प्रकार रखना पसंद करते हैं कि दोनों हाथों की उंगलियाँ घूम कर एक दूसरे के आमने सामने हो जावें। खैर, यह कोण कैसा ही हो, परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि अँगूठों के नीचे की गद्दियाँ पैरों के

---

*बहुत आदमियों को शुरू में ऐसा करने में बड़ी कठिनाई मालूम होगी। यदि वे हाथों की उंगलियों से पैरों के अँगूठों ही को छू सकें, तो शुरू में इतना ही काफ़ी होगा। परन्तु इस बात के लिए कोशिश करते रहना चाहिए कि हाथों की हथेलियाँ पूरे तौर से ज़मीन पर रक्खी जा सकें और घुटने बिल्कुल तने रहें। पहिले हथेलियों को ज़मीन पर रक्खा जावे और उसके बाद घुटनों को सीधा किया जावे। यह स्मरण रखना चाहिए कि सूर्य नमस्कार करने का पूरा लाभ तभी प्राप्त हो सकता है, जब इस सूरत को ठीक तौर से कर लिया जावेगा।

अँगूठों के साथ एक पंक्ति में हो। जिस समय तुम झुको और माथे को घुटनों से छुआने की कोशिश करो, उस समय तुमको कुछ थोड़ा सा साँस बाहर निकाल देना चाहिए।

तीसरी सूरत–एक टांग को पीछे ले जाओ *। परन्तु ऐसा करने में बांहें कुहनी पर से मुड़ने न पावें। पैर को इतना पीछे ले जाया जावे कि बांहें कंधे से कलाई तक ठीक लम्ब-रूप में रहें, अर्थात् बिल्कुल सीधी रहें। सिर को ऊंचा करके यथा-शक्ति पीछे देखने की कोशिश करो।

चौथी सूरत–दूसरी टांग को भी पीछे ले जाओ। दोनों पैरों के टखनों और अँगूठों को मिला कर रक्खो। बाँहों को सीधा रक्खो और सांस भरे रहो।

पांचवीं सूरत–घुटनों को जमीन पर टेक दो और ठोड़ी को सीने से छुआओ अथवा छुआने की कोशिश करो। नाक द्वारा पूर्ण रूप से सांस बाहर निकाल दो और जितना हो सके, उतना पेट को अन्दर को खींचो। कूल्हों को ऊपर को उठाए रक्खो और माथे और सीने को कपड़े से छुआओ।

छटवीं सूरत–हाथों को सीधा करते हुए सिर को उठाओ और धीरे धीरे गहरा सांस लो और सीने को आगे की ओर इधर उधर फैलाओ। इसके बाद गर्दन को पीछे की ओर झुका-कर (इतनी झुकाई जावे, जितनी वह झुकाई जा सके) छत अथवा आकाश की ओर देखो। घुटने जमीन ही पर टिके रहें।

---

* पहिली आवृत्ति में उसी पैर को, जो आरम्भ में पीछे गया था, पीछे ले जाते रहना चाहिए और दूसरी आवृत्ति में दूसरे को। इसी प्रकार और आवृत्तियों में भी करना चाहिए।

सातवीं सूरत–चौथी सूरत में आजाओ। इसके बाद ज़मीन से एड़ियों को छुआओ। सिर अन्दर की ओर झुका रहे और पेट अन्दर को खिंचा रहे।

आठवीं सूरत–इसमें तीसरी और दूसरी सूरतों को करते हुए पहिली सूरत में आजाते हैं। पहिली सूरत में आने के लिए सबसे पहिले एक पैर को एक झटके में उठाकर दोनों हथेलियों को गद्दियों के साथ एक रेखा में आगे रक्खो और तीसरी सूरत की भाँति गर्दन को पीछे की ओर झुका कर देखो। जब ऐसा करो, तब मुड़े हुए पैर की जांघ पेट को दबावे और दूसरी टांग का घुटना ज़मीन पर टिक जावे। इसके बाद दूसरी सूरत में आजाओ और फिर पहिली सूरत में।

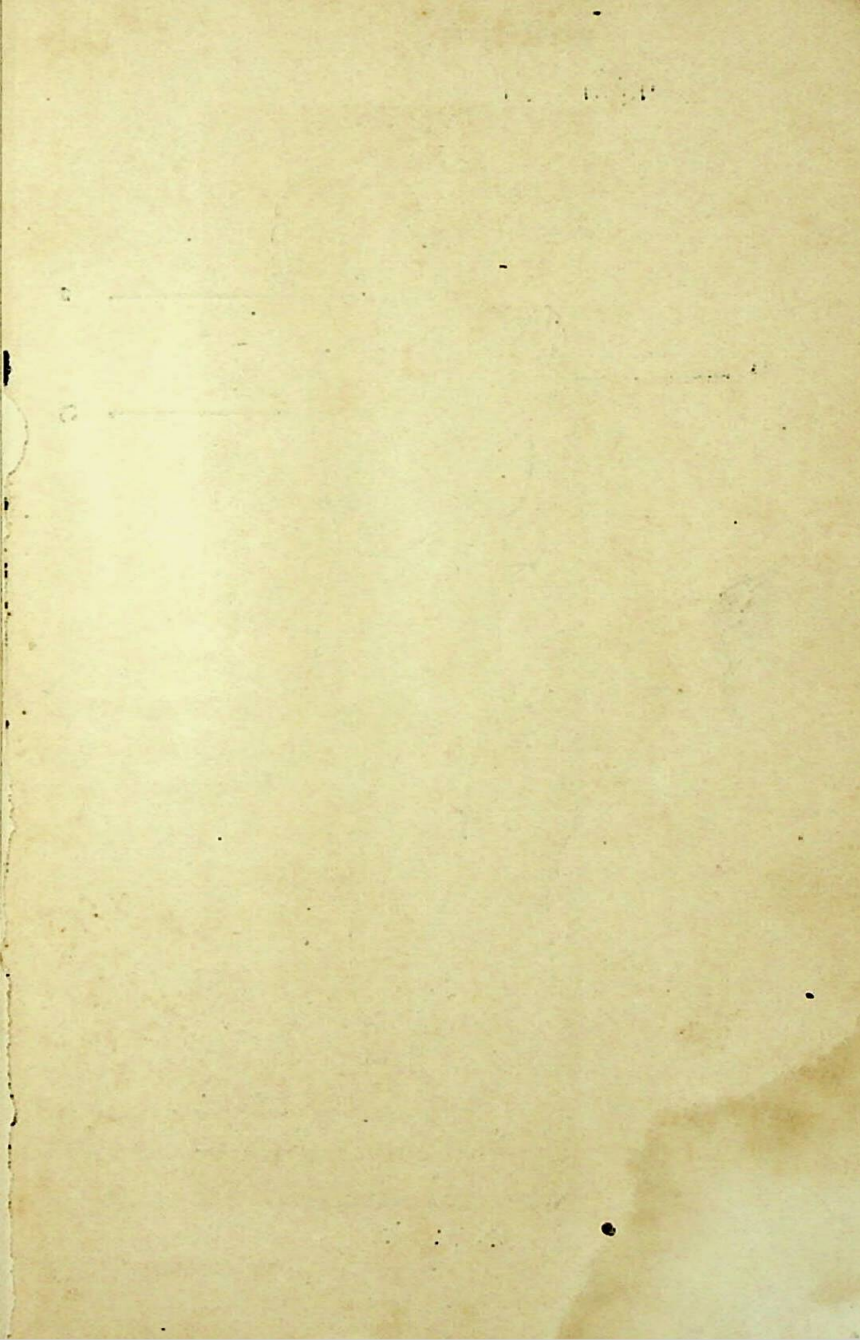
नवीं सूरत—सांस रोक कर दूसरी सूरत में आजाओ और केवल नाक के रास्ते से श्वास को बिलकुल बाहर निकाल दो।

दसवीं सूरत—केवल नाक के द्वारा गहरी सांस खींच कर पहली सूरत में आजाओ। इस बात का ख़ास तौर पर ध्यान रक्खो कि घुटने सीधे रहें। इस प्रकार एक नमस्कार पूरी होती है।

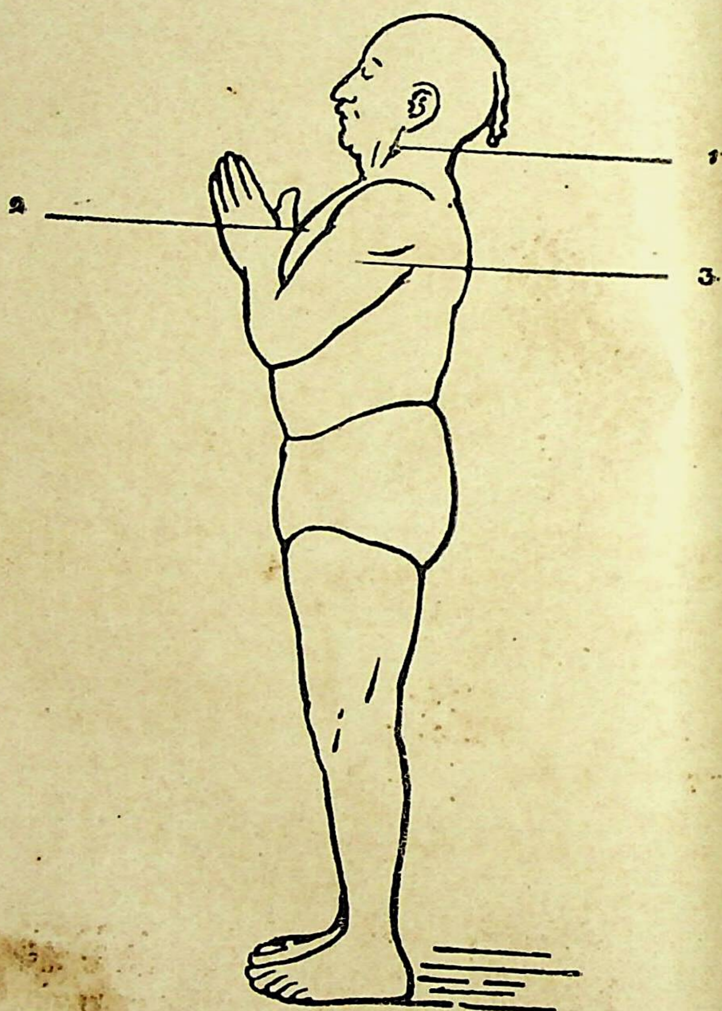
अगले मंत्र का उच्चारण करो। मुंह को बंद रक्खो। नाक के द्वारा श्वास भीतर खींचो। होंठ बंद रक्खो और केवल नाक से श्वास लेते हुए दसों सूरतों को फिर से दुहरा जाओ।

सूर्य-नमस्कारों को आरम्भ में सदा धीरे धीरे करना चाहिए, जिससे तुमको यह ज्ञात हो जावे कि शरीर के किस अंग पर ज़ोर पड़ रहा है। इस प्रकार करने से तुमको यह ज्ञात हो जायगा कि सूर्य-नमस्कार में शरीर के प्रत्येक अंग पर अलग अलग ज़ोर पड़ता है।

०



पहली सूरत



पृष्ठ १५ देखिए

पांचवां प्रकरण

सूर्य-नमस्कार और शरीर का विकास

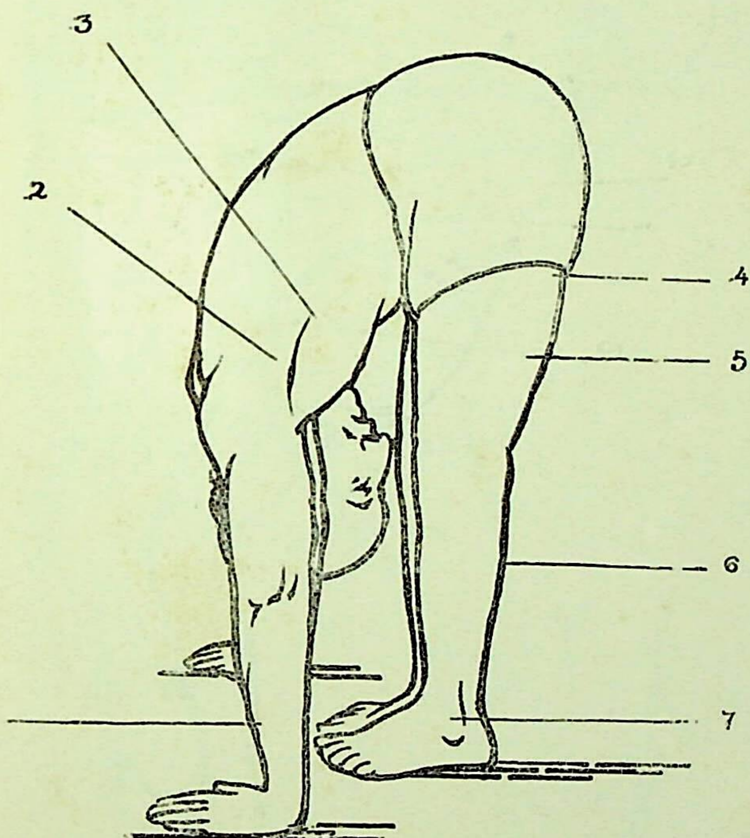
अब हमको यह बतलाना है कि सूर्य-नमस्कार की दस सूरतों में से किन सूरतों में शरीर के किन अंगों पर विशेष जोर पड़ता है तथा कौन पुट्ठे संचालित होते हैं।

पहिली सूरत—इसमें किसी विशेष पुट्ठे पर जोर नहीं पड़ता है। इसमें केवल गर्दन और सीने को कुछ कड़ा करना पड़ता है, जिससे सिर, गर्दन और धड़ क़रीब क़रीब लम्बरूप हो जावें। जिन मनुष्यों के कंधे गोल हैं अथवा जिनकी पीठ झुकी हुई है, उनको इस सूरत में कुछ सुहाना-सा जोर पड़ेगा। क्योंकि इस सूरत में गहरा सांस लेने के कारण फैंफड़े फूलते हैं, जिससे सीने पर कुछ जोर पड़ना भी सम्भव है। इसमें बाँहों के ऊपरी तथा नीचे के भागों, कलाइयों और उँगलियों को भी कड़ा करना पड़ता है। यदि इन अंगों को ढीला रक्खा जायगा, तो कोई लाभ न होगा। खूब गहरा सांस लो, सांस भर कर उसको रोको, और सीधे और कड़े होकर खड़े हो। बस ये बातें इस सूरत में करनी आवश्यक हैं। इस सूरत में जिन पुट्ठों पर कुछ जोर पड़ता है वे ये हैं—(१) वे दो पुट्ठे, जो गर्दन के इधर उधर होते हैं और जो हंसली से कान तक जाते हैं (२) सीने के नीचे और ऊपर के पुट्ठे (२) भुज-दंडों अर्थात् भुज-दंडों के बाहरी पुट्ठे।

दूसरी सूरत-इस सूरत में कुछ थोड़ा सा सांस निकालते

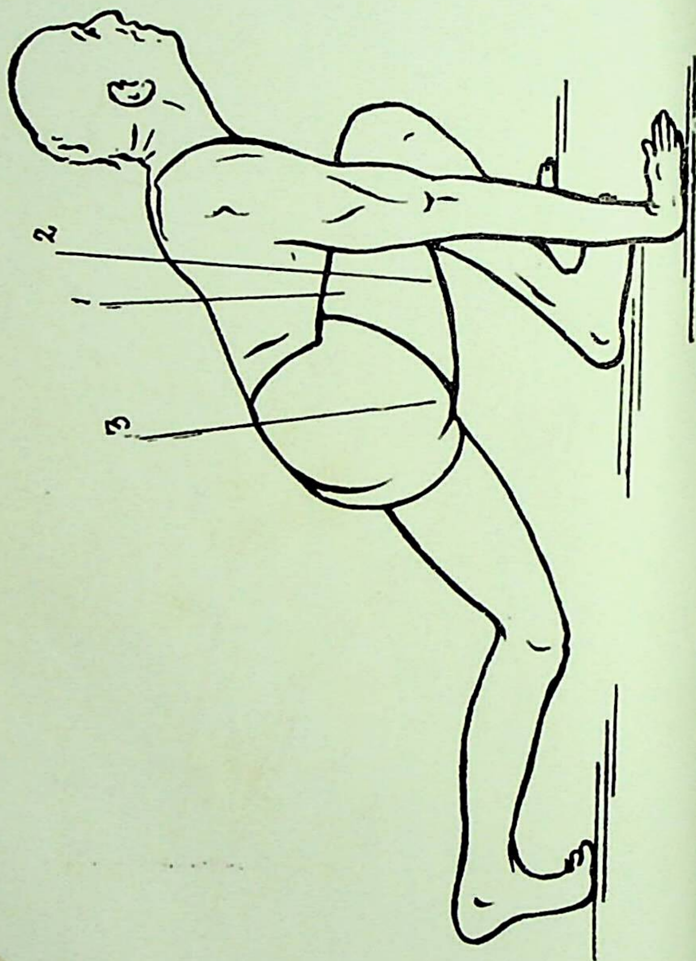
हुए हाथों की हथेलियों को एक दूसरे से २० अथवा २२ इंच के फ़ासले पर इस प्रकार रखते हैं कि वे पैरों के अँगूठों के साथ एक रेखा में रहें और ऐसा करने के समय पैरों के घुटने न मुड़ने पावें। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि ये इस प्रकार से उंगलियाँ सटा कर रक्खी हुई हथेलियाँ इसी प्रकार रक्खी रहती हैं और ये केवल उसी समय उठती हैं, जब कि नमस्कार की अन्तिम सूरत में आना होता है। तुमको इस सूरत में यह अनुभव होगा कि पिंडलियों के पुट्ठों, जंघाओं के पिछले भाग, कूल्हों, कमर और पीठ के क़रीब क़रीब सभी पुट्ठों पर खूब खिंचाव अथवा ज़ोर पड़ता है, जिसका अर्थ यह है कि ये अंग धीरे धीरे बलवान होते हैं और उनके विकार तथा रोग दूर होते हैं। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि ये उपरोक्त अंग, वे अंग हैं, जिनमें असमय ही में दुर्बलता अपना अड्डा जमा लेती है। इस सूरत में विशेष खिंचाव उन पुट्ठों पर पड़ता है, जो पीठ को कंधों से मिलाये हुए हैं। इसमें भुज-दंडों के बाहरी पुट्ठों पर भी असर पड़ता है। घुटनों को सीधा रखते हुए जब हाथों की हथेलियों को कपड़े पर रखने के लिए सामने की ओर झुका जाता है, तब पेड़ू और पेट के पुट्ठों पर बहुत ज़ोर पड़ता है। जब तुम हाथों की हथेलियों को कपड़े पर टेको, उस समय तुमको यह ध्यान करना चाहिए कि हम वास्तव में स्वास्थ्य, सामर्थ्य और दीर्घायु प्राप्त कर रहे हैं। और जब तुम ऐसा ध्यान कर चुको, तब तुमको आगे बढ़ना चाहिए। इस सूरत में इन पुट्ठों पर ज़ोर पड़ता है—(१) बांहों के नीचे के भागों के बाहरी पुट्ठे, (२) कंधों के पीछे के पुट्ठे, (३) पसलियों के पुट्ठे, (४) चूतड़ों के पुट्ठे, (५) जंघाओं के बाहरी पुट्ठे, (६) टांगों के नीचे के भागों के बाहरी पुट्ठे, (७) टख़नों के पीछे के और एड़ियों के ऊपर के पुट्ठे।

दूसरी सूरत



पृष्ठ १६ देखिए

तीसरी सूरत



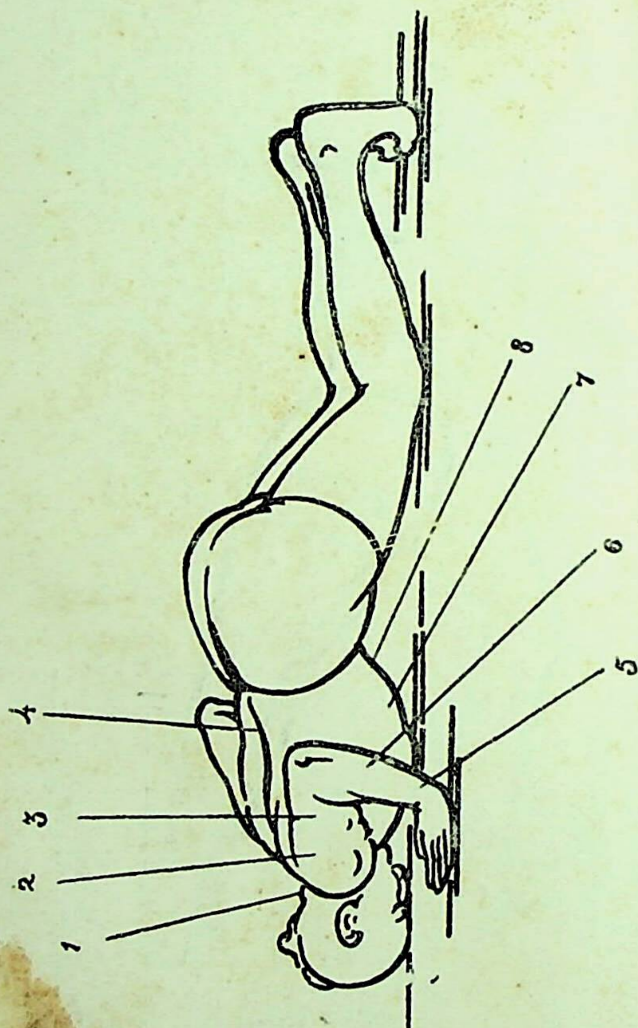
पृष्ठ १७ देखिए

चौथी सूरत



पृष्ठ १७ देखिए

पांचवीं सूरत



पृष्ठ १७ देखिए

तीसरी सूरत—इस सूरत के आरम्भ और अन्त में एक ही सी क्रिया की जाती है। जब सीधे पैर को पीछे लेजाया जावे, तब बांये पैर की जंघा तिल्ली को दबावे और जब बांये पैर को पीछे किया जावे, तब सीधे पैर को जंघा जिगर को दबावे। इस दबाव में जंघाओं के नीचे के भाग पर बहुत ज़ोर पड़ेगा। इस सूरत में पीछे फेंके हुए पैर की जंघा, पैरों के टखनों और हाथ की कलाइयों पर भी ज़ोर पड़ता है। इस सूरत में जो पुट्ठे बलिष्ठ होते हैं, वे ये हैं—(१) जंघाओं के भीतरी पुट्ठे, (२) जंघाओं के नीचे के पुट्ठे और (३) वे पुट्ठे, जो जंघाओं को भीतर को खींचते हैं।

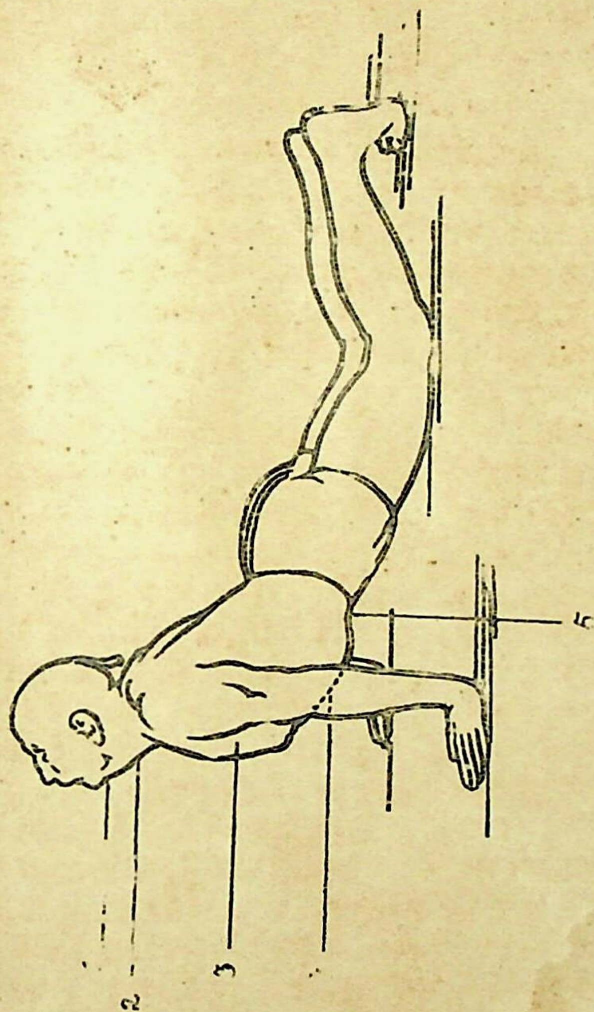
चौथी सूरत—इस सूरत में शरीर का सारा बोझ हथेलियों, भुजाओं और पैर की अंगुलियों पर सम्हला रहता है।

पांचवीं सूरत—जब झुको, तब सिर को इतना नीचे करो कि ठोड़ी सीने को दबाने लगे। सिर को आगे-पीछे करने से गर्दन और गले (कंठ) के पुट्ठे बलिष्ठ होते हैं। ज़मीन पर पड़ जाने में घुटनों से ऊपर का शरीर का सम्पूर्ण भाग हाथों, कलाइयों और बांहों के आगे के भागों पर टिका रहता है। इसलिए, इन तीनों अंगों में बल आता है। इस समय सांस को पूर्ण रूप से निकाल देते हैं। इस पड़ने की दशा में शरीर के बहुत से अंग, जैसे पैरों के अंगूठे, घुटने, हाथ, सीना और माथा ज़मीन को छूते हैं। परन्तु पेट ज़मीन को नहीं छूता, किन्तु उसको यथाशक्ति अन्दर को खींचना पड़ता है, जिसका फल यह होता है कि पेट के सब पुट्ठों पर ज़ोर पड़ता है और वे मज़बूत होते हैं। पांचवीं सूरत में जो पुट्ठे बलिष्ठ बनते हैं, वे ये हैं—(१) बांहों के नीचे के भागों के बाहरी पुट्ठे, (२) बांहों के नीचे के भागों के बाहरी नीचे के पुट्ठे, (३) पसलियों की हड्डियों के बीच के पुट्ठे, (४) पेट के दाएं

और बाएं पुट्ठे, (५) गर्दन के पीछे का पुट्ठा, (६) कंधों के पुट्ठे (७) भुज-दंडों के बाहरी पुट्ठे, और (८) पीठ के नीचे के पुट्ठे।

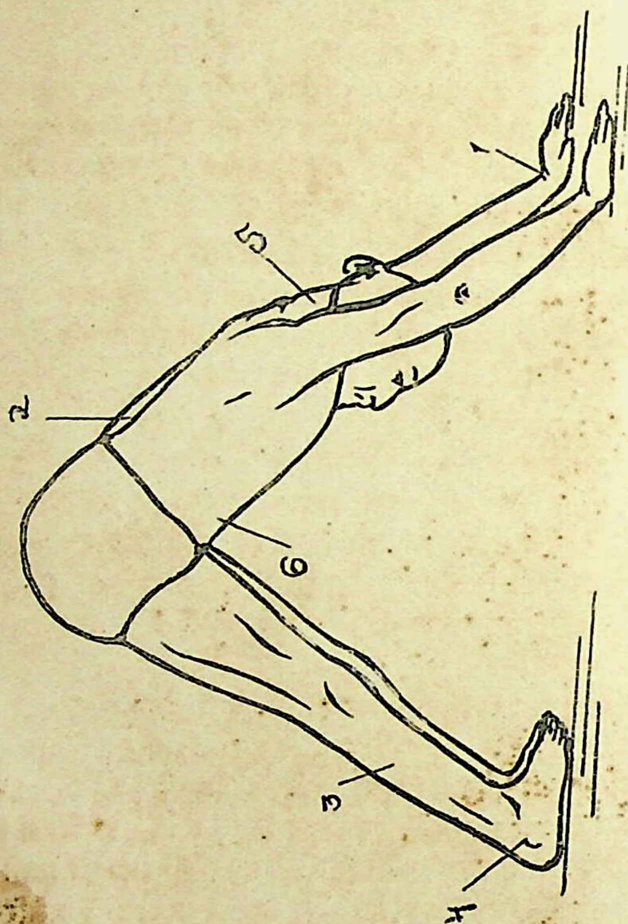
छटवीं सूरत—खड़े होने की सूरत में आने के पूर्व पीठ को पीछे की ओर जितना वह झुक सके, उतना झुकाया जावे और साथ ही साथ ख़ूब गहरा धीरे धीरे सांस भी लिया जावे और सिर को ऊपर की ओर इतना उठाया जावे कि छत अथवा आकाश दिखाई देने लगे। इस सूरत में समस्त शरीर का बल बांहों पर रहता है। इस कारण बांहों के साधारणतः सब भाग और विशेषतः भुज-दंडों के बाहरी पुट्ठे पूर्ण रूप से विकसित होते हैं और बांहें सुन्दर, सुडोल, सुदृढ़ तथा लचीली हो जाती हैं। सीने को भी लाभ होता है। वह चौड़ा और गहरा हो जाता है। गहरा सांस लेने के कारण पेडू के पास की मज्जा (चर्बी) धीरे धीरे कम हो जाती है। सीने का लपेट बढ़ता है और कमर का लपेट कम होता है। यही बस साधारण स्वास्थ्य का एक लक्षण है। यह लक्षण इस बात का भी द्योतक है कि अब पेट के सब आन्तरिक विकार, जैसे तिल्ली और जिगर की शिकायतें और आंत के सब रोग दूर हो गये हैं। इस सूरत में भी जंघा, पीठ, गर्दन और गले के बहुत से पुट्ठे सुदृढ़ बनते हैं। सिर के आगे-पीछे आने-जाने के कारण गले के आगे के पुट्ठे और गर्दन के पीछे के पुट्ठे बहुत बलवान बनते हैं। इस सूरत के करने से कंठ के उन रोगों का जो नियमानुकूल भोजन न करने के कारण पैदा हो जाते हैं, सब भय धीरे धीरे दूर हो जाता है। और यह भी विश्वास होता है कि शायद इस सूरत से कंठमाला भी दूर हो सकती है। इस सूरत में ये पुट्ठे विकसित होते हैं—(१) ठोड़ी के नीचे का पुट्ठा (२) टेंटुए के नीचे की ग्रंथियों के पास का पुट्ठा, (३) सीने के पुट्ठे, (४) पेट के बीच के पुट्ठे और (५) पेट के बाक़ी पुट्ठे।

छटवीं सूरत



पृष्ठ १८ देखिए

सातवीं सूरत



पृठ १६ देखिए

सातवीं सूरत—पैरों को पीछे से आगे लाने में पेट और उसके इधर उधर कैसा दबाव पड़ता है, यह ऊपर तीसरी सूरत में बतलाया जा चुका है। परन्तु दोनों पैरों को अपने स्थान पर लाने के समय इस बात पर विशेष ध्यान रखना चाहिए कि पहिली सूरत में आने के लिए कपड़े से हाथों को उठाने से पहिले भीतर को साँस खींचा जावे और घुटने सीधे रक्खे जावें।

आठवीं, नवीं और दसवीं सूरत—ये सूरतें क्रमशः तीसरी, दूसरी और पहली सूरतों जैसी हैं। पैर को आगे बढ़ाते समय पेट और अन्य अंगों पर किस तरह दबाव पड़ता है, यह ऊपर तीसरी सूरत के सम्बन्ध में समझाया जा चुका है।

जब केवल एक आवृति (१५ नमस्कार) ही की जावे, तब पैरों को—एक के बाद दूसरा—आगे-पीछे उठना चाहिए, जिससे पेट के दोनों ओर, और दोनों जंघाओं पर पूर्ण रूप से ज़ोर पड़े। जब एक से अधिक आवृतियाँ की जावें, तब एक आवृति में केवल एक ही पैर आगे-पीछे किया जावे और दूसरी में दूसरा। बस, इसी प्रकार तीसरी तथा चौथी आदि आवृतियों में भी करना चाहिए।

यदि जिगर में कोई विकार हो, तो ऐसी दशा में उस समय तक, जब तक कि जिगर नीरोग न हो जावे, तब तक केवल सीधे पैर ही को आगे बढ़ाते रहना चाहिए। जिनके जिगर का रोग पैतृक है अथवा पुराना है, उनको चाहिए कि वे सदा केवल सीधे पैर ही को आगे करते रहें। इसी प्रकार वे, जिनको तिल्ली की शिकायत है—चाहे वह पैतृक है अथवा दुर्वात (मलेरिया) आदि के कारण—उनसे हमारा यह कहना है कि आप केवल बाँए पैर ही को आगे बढ़ावें। अस्तु, इस सम्बन्ध में स्वयं विचार करके चलना भी उचित है।

अब तक यह बतलाया गया है कि शरीर के भिन्न भिन्न पुट्ठे, अंग तथा भाग किस प्रकार विकसित और बलिष्ठ किये जाते हैं। अब हम को यह देखना है कि सूर्य-नमस्कार में मन क्या महत्व-पूर्ण कार्य्य करता है।

विचार-बल का महत्व

मनुष्य के प्रत्येक कार्य्य पर मनोबल अथवा विचार-बल का ऐसा प्रभाव पड़ता है कि बिना उसकी सहायता के उसका कोई कार्य्य सन्तोष-रूप में नहीं हो सकता। अतः इस दिव्य व्यायाम-पद्धति के पालन में प्रधान विचार यह रहना चाहिए कि इन नमस्कारों के आदि, मध्य तथा अन्त में हमारी शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार की शक्तियों का विकास हो रहा है और ये सदा अच्छे काम में प्रवृत्त होंगी और काम आवेंगी। प्रत्येक व्यायाम के करने में इस विश्वास को रखना चाहिए कि इस व्यायाम का प्रत्येक हिलाव-जुलाव शरीर के किसी विशेष पुट्ठे अथवा अंग को अच्छा बना रहा है और उस समय सम्पूर्ण विचार-बल अर्थात् मस्तिष्क-शक्ति को उस पुट्ठे अथवा उस अंग विशेष की ओर एकाग्र कर देना चाहिए। व्यायाम करते समय मन को इधर उधर घूमने देने और मशीन की भाँति अथवा उदासीनता तथा निरुत्साह के साथ शरीर के अंगों को हिलाने-जुलाने से व्यायाम का जो उद्देश्य है, वह सब नष्ट हो जाता है।

सूर्य-नमस्कारों को यदि ढीलेपन तथा आलस्य के साथ देर तक किया जावे, तो उससे शरीर के लिए कुछ लाभ तो अवश्य हो जायगा, परन्तु शरीर के अंग प्रति अंग का विकास, रोग की चिकित्सा और उसकी पीड़ा का बहिष्कार उस समय तक नहीं हो सकेगा, जब तक कि सूर्य-नमस्कारों में पूर्ण विचार-बल के प्रयोग को अंग प्रति अंग पर नहीं किया जायगा। एक बढ़ई

अथवा लुहार के पुट्ठे अच्छी विकसित अवस्था में होते हैं। परन्तु प्रायः उनमें शक्ति तथा लचीलापन का अभाव होता है। ढीलेपन और आलस्य से देर तक सूर्य-नमस्कार का अभ्यास करने से भी शायद बढ़ई अथवा लुहार के जैसे पुट्ठे पैदा हो सकते हैं। इसलिए, इस अवाञ्छनीय फल से वंचित रहने के लिए पूर्ण विचार-बल को नमस्कार की हर सूरत में, बारी बारी से, प्रत्येक अंग पर, जब उस पर ज़ोर पड़े, तब, एकाग्र करना चाहिए। और उस समय यह विचार करना चाहिए कि अमुक पुट्ठा तथा अंग अधिक बलवान, दृढ़, सुन्दर तथा विकसित हो रहा है। इस प्रकार मनोबल लगाकर व्यायाम करने से तुमको व्यायाम करने का फल शीघ्र प्राप्त होगा। यदि इस धर्म-कृत्य के समय मन को इधर उधर दौड़ने दिया जावेगा, तो इस सब समय तथा परिश्रम का फल यह होगा कि शरीर में केवल पुट्ठे ही पुट्ठे विकसित हो जायंगे और वास्तविक लाभ की प्राप्ति न होगी।

———

छटवाँ प्रकरण

सूर्य-नमस्कार मे दृष्टि और वाणी का प्रयोग

मन को एकाग्र करने के लिए वाणी अति लाभदायक है। मन को एकाग्र अथवा पूर्ण रूप से ध्यानावस्थित करने के लिए गीता में जो श्री कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया है, उसको हमें यहाँ पर उद्धृत करना उचित ज्ञात होता है—

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥

[भगवद्गीता, ६ । १३]

अर्थात्—"पीठ, गर्दन और सिर को सीधा करके बैठ जाओ और नासिका के अग्र भाग को देखो। (परन्तु) दृष्टि इधर उधर न जाने पावे।"

इसी प्रकार जब सूर्य नमस्कार की जावें, तब, जैसा कि हम पहिले कह आये हैं, सूर्य अथवा अपने इष्टदेव की प्रतिमा या स्वस्ति चिन्ह अथवा एक वृताकार चित्र को अपने सामने लटका लिया जावे। जब सिर को झुकाया जाय, तब दृष्टि भूमि पर पड़े और जब उसको ऊंचा किया जाय, तब वह छत अथवा आकाश की ओर रहे। परन्तु जब तुम पहिली सूरत में खड़े हो जाओ, तब तुम्हारे सामने किसी ऐसे एक विशेष पदार्थ के रहने की आवश्यकता है, जिसके द्वारा तुम्हारे मन को पूर्ण रूप से एकाग्र होने में सहायता मिल सके। इसलिए, दृष्टि को सूर्य-नमस्कार का एक आवश्यक अंग माना गया है।

वाणी का प्रयोग

सूर्य-नमस्कार के मुख्य मंत्र निम्नांकित हैं—

(अ) ओं—इसको ओंकार या प्रणव कहते हैं।

(ब) छः बीज मंत्र—हाम्, हीम्, हुम्, हेम्, हौम्, हः।

(स) प्रणाम के रूप में सूर्य के ये बारह नाम हैं—(१) मित्राय नमः (२) रवये नमः (३) सूर्याय नमः (४) भानवे नमः (५) खगाय नमः (६) पूष्णेनमः (७) हिरण्यगर्भाय नमः (८) मरीचये नमः (९) आदित्याय नमः (१०) सवित्रे नमः (११) अर्काय नमः (१२) भास्कराय नमः।

इन बारह नामों के, जो सब सूर्य-वाची हैं, निम्नलिखित अर्थ हैं—

(१) मित्र—सब का मित्र।

(२) रवि—सब से प्रशंसित अर्थात् जिसकी सब ने प्रशंसा की है।

(३) सूर्य—प्रवर्तक, संचालक अथवा उत्तेजक।

(४) भानु—प्रकाश अथवा सुन्दरता देने वाला।

(५) खग—इन्द्रियों को उत्तेजित करने वाला।

(६) पूषन्—पालन-पोषण करने वाला।

(७) हिरण्यगर्भ—वीर्य में बल और जीवन को विकसित करने की शक्ति रखने वाला।

(८) मरीचि—रोगों का नाशक।

(९) आदित्य—खींचने वाला, आकर्षित करने वाला।

(१०) सवितृ—उत्पादक अथवा पैदा करने वाला।

(११) अर्क—पूजनीय अर्थात् पूजा करने के योग्य।

(१२) भास्कर—प्रकाशवान्।

प्राचीन समय में इन मंत्रों के उच्चारण करने का क्रम ऐसी वैज्ञानिक विधि से रक्खा था कि इनका कोई मनुष्य कितनी ही बार क्यों न उच्चारण करे, परन्तु वह थक नहीं सकता था। बारह नमस्कारों की पहिली माला को, जो ओं ह्रां मित्रायनमः से आरम्भ होकर ओं ह्रः भास्करायनमः पर समाप्त होती है, कुछ शीघ्रता के साथ उच्चारण करना चाहिए। छः नमस्कारों की दूसरी माला में, जो ओं ह्रां ह्रीं मित्ररविभ्यां नमः से आरम्भ होकर ओं ह्रौं ह्रः अर्क भास्कराभ्यां नमः पर समाप्त होती है, पहिली माला की अपेक्षा कुछ अधिक समय लगना चाहिए। नमस्कारों की तीसरी माला में, जिसमें ओं ह्रां ह्रीं, ह्रूँ ह्रैं, मित्ररविसूर्यभानुभ्यो नमः ये इत्यादि हैं, दूसरी से भी अधिक समय लगता है। चौथी माला जो इन सब से बड़ी है, यह है—ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः, ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः मित्ररविसूर्यभानुखगपुषहिरण्यगर्भमरीच्यादित्यसवित्रर्कभास्करेभ्यो नमः'। इसका तीन वार सब से अधिक समय देकर उच्चारण करना चाहिए। इन चारों मालाओं में सब मिलाकर २४ नमस्कार हैं, जिनमें 'श्रीसवित्रे सूर्यनारायणाय नमः' इस नमस्कार को मिला देने से ये सब २५ हो जाती हैं। इस प्रकार इन २५ सूर्य-नमस्कारों का एक पूर्ण आवर्तन अथवा आवृति कहलाती है। जब इन नमस्कारों की दूसरी आवृति आरम्भ होती है, तब शरीर में क़रीब क़रीब ऐसी ही नवीनता अथवा उससे भी अधिक नवीनता अनुभव होती है, जैसी कि पहिली आवृति के आरम्भ में थी। इस नवीनता का कारण यह है कि पहिली आवृति के द्वारा शरीर का सम्पूर्ण आलस्य दूर हो जाता है। इस कारण १२ अथवा १६ आवृत्तियों के करने के

उपरांत यद्यपि शरीर में थकान भले ही हो जावे, परन्तु सांस नहीं टूटता। यह बीज-मंत्र उच्चारण करने का एक अद्भुत लाभ है।

इन मंत्रों को खड़ी हुई हालत में उच्चारण करना चाहिए, अर्थात् पहिली सूरत ही में उच्चारण करना चाहिए। नमस्कार की अन्य सूरतों में—जैसे झुकना, पड़ना, उठना इत्यादि—में केवल नासिका द्वारा सांस लेने और निकालने ही में सचेष्ट रहना चाहिए।

वाणी द्वारा स्वास्थ्य की प्राप्ति

अब उन बीज-मंत्रों (ओं हां हीं इत्यादि) की, जो देखने में निर्थक ज्ञात होते हैं, उन आश्चर्य-जनक शक्तियों का वर्णन करना है, जो औषधि तथा जीवन-मूरि का काम करती हैं और जो शारीरिक तथा मानसिक दो प्रकार की हैं; और यह भी बतलाना है कि वे शरीर के भिन्न भिन्न अंगों तथा दिल, दिमाग़, और पेट आदि पर किस प्रकार प्रभाव डालती हैं और शरीर को सब प्रकार के विकारों से किस प्रकार वंचित रखतीं तथा विकार-युक्त अंगों को स्वस्थ बनाती हैं।

(अ) ओं—यह पवित्र अक्षर 'प्राणायाम्' के प्रत्येक मंत्र के आरम्भ में आता है और कभी कभी मंत्र के प्रत्येक अक्षर के आरम्भ में और प्रायः यह मंत्रों के आदि और अन्त दोनों ही स्थान पर रहता है। यह ओं अक्षर सम्पूर्ण वैदिक ज्ञान का सार समझा जाता है। भगवान श्री कृष्ण का निम्नांकित वचन इसके महत्व को स्पष्ट रूप से प्रकट करता है—

ओं इत्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्॥

[भगवद्गीता, ८। १३]

अर्थात् "जो एक अक्षर के ब्रह्म (ओं) का उच्चारण करता हुआ मेरा स्मरण करता है, वह इस शरीर को त्याग कर परम गति को प्राप्त होता है।"

(ब) ह्राम्—इस मंत्र में प्रत्येक अक्षर का लम्बा उच्चारण होता है। इसमें के 'आ' और 'म्' के उच्चारण में इतना समय लगता है, जितना इनके ('आ' और 'म' के) क्रमशः चार और तीन बार के उच्चारण में लगता है। 'ह' अक्षर का उच्चारण हृदय से निकलता है। इसलिए, जितनी बार 'ह्राम्' मंत्र का उच्चारण किया जायगा, उतनी ही बार हृदय का संचालन तीव्रता के साथ होगा। शरीर में रुधिर शुद्ध होने की क्रिया हृदय ही में होती है। क्योंकि किसी विकृत अंग के लिए जो रुधिर जाता है उसका भेजनेवाला हृदय ही है। यदि यह रुधिर उस विकृत अथवा रोगी अंग में पहुँचने के पूर्व शुद्ध कर दिया जाय, तो उसका यह प्रभाव होगा कि रोग दूर हो जायगा। और प्रत्युत, यदि अशुद्ध अथवा दूषित रुधिर को शरीर में दौड़ने दिया जाय, तो विकृत अथवा रोगी अंग अच्छा होने के बजाय और अधिक रोगी हो जायगा। इसलिए, प्रत्येक बीज-मंत्र के आरम्भ में 'ह' अक्षर इसी विचार से रक्खा गया है कि वह केवल हृदय को संचालित करे और बलवान बनावे, जिससे शरीर में शुद्ध रुधिर ही का संचार होवे।

प्रत्येक मंत्र 'ह' अक्षर से आरम्भ होता है और 'म्' पर समाप्त। साधारणतः नासिका द्वारा ही सांस लिया जाता है। नासिका द्वारा सांस लेने से भी रुधिर शुद्ध होता है। नासिका द्वारा सांस लेने के साथ जो आक्सिजन [प्राण-वायु] शरीर के भीतर जाती है, वह दूषित रुधिर को शुद्ध और लाल बनाती है। नासिका द्वारा सांस लेने में नासिका और श्वास-नलिका,

ये दो अंग काम में आते हैं। इसलिए, इन दोनों अंगों का विकार-रहित एव नीरोगी रहना अति आवश्यक है। बस, इसी अभिप्राय से प्रत्येक बीज-मंत्र के अन्त में 'म्' अक्षर रक्खा गया है और उसका देर तक लम्बा उच्चारण बतलाया गया है।

मुख्य अंगों को बलवान करना

प्रत्येक मंत्र में जिस प्रकार 'ह्' और 'म्' आते हैं उसी प्रकार 'र्' भी आता है। यह 'ह्' और 'म्' के बीच में पड़ता है। मंत्र-शास्त्र* में 'र्' अक्षर का ऐसा ही महत्व है, जैसा कि 'ओं' का। 'र्' अक्षर के उच्चारण में जिह्वा का अग्र भाग तालू के अग्र भाग को छूता है, जिसका प्रभाव यह होता है कि, मस्तिष्क में संचालन उत्पन्न होता है। इसलिए, इन आध्यात्मिक बीज-मंत्रों का उच्चारण शरीर के इन तीन मुख्य अंग हृदय (दिल), कंठ (गला), और मस्तिष्क (दिमाग़) को, जिनका नीरोग एवं स्वस्थ रहना एक स्वस्थ तथा बलवान शरीर के लिए आवश्यक है, संचालित करता तथा शक्तिशाली बनाता है।

संस्कृत भाषा में 'ह्राम्' मंत्र की प्रशंसा में निम्नांकित एक सुन्दर श्लोक है—

रकारोच्चारणमात्रेण मुखान्निर्याति पातकम् ।
पुनः प्रवेशभीत्या च मकारस्तु कपाटवत् ॥

अर्थात् "'ह्राम्' का केवल 'रा' ही मुख को खोल कर सब विकारों को दूर कर देता है और 'म', यह डर कर कि कहीं, वे निकले हुए विकार, खुले हुए मुख द्वारा, शरीर के भीतर

---

* मंत्र शास्त्र यह बतलाता है कि देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए स्तुति, भजन तथा जादू-टोना आदि का प्रयोग किस प्रकार करना चाहिए।

फिर प्रवेश न कर जायँ, मुख के होटों को बन्द करके किवाड़ों का काम करता है। "

प्रत्येक बीज-मंत्र के उच्चारण में 'ह्' कहने के कारण, जो सभी मंत्रों में आता है, मुख खुलता है और 'म्' के कहने पर बन्द हो जाता है। जब सूर्य-नमस्कार करने में शरीर को हिलाया जुलाया जाता है, तब साँस लेने की समस्त क्रिया नासिका द्वारा ही की जाती है। और सूर्य्य के बारह नामों में से प्रत्येक नाम -यथा 'मित्राय नमः'--के उच्चारण करने में भी 'नमः' कहने में मुख के होट बंद हो जाते हैं।

'ह्राम्' में का दीर्घ 'आ' ऊपर की तीन पसलियों को बलवान बनाता, खाना लेजाने वाली नली को शुद्ध करता, दिमाग़ को संचालित करता, आलस्य को दूर करता और फैंफड़ों को उत्तेजित करके उनके ऊपरी भाग को शुद्ध करता है। 'ह्राम्' मंत्र से दमा और खांसी के रोग अच्छे होते हैं और यह क्षयी रोग को नहीं होने देता।

(स) 'ह्रीम्' की 'ई' का लम्बा उच्चारण गले, तालू, नाक, और दिल के ऊपरी भाग की क्रिया को उत्तेजित करता है। 'ह्रीम्' के उच्चारण से श्वासेंद्रिय का कफ़-बलग़म और पेट और आंतों का मल, जो वहाँ पैदा होता रहता अथवा जमा हो जाता है, निकल जाता है और इन अंगों की सफ़ाई हो जाती है। सूर्य-नमस्कार की पहिली अथवा दूसरी आवृति में, प्रायः नहीं, किन्तु कभी कभी यह देखा गया है कि नाक और मुँह से रक्तूबत निकलती है। परन्तु दो आवृतियों के करने के उपरान्त श्वास-नलिका और खाना लेजाने वाली नली बिल्कुल साफ़ हो जाती है।

पेट को उत्तेजित करना

(द) 'ह्‌म्' का दीर्घ 'ऊ' जिगर, तिल्ली या बरवट, पेट और अंतड़ियों (आंतों) को उत्तेजित करता और पेड़ू को कम करता है। जो स्त्रियाँ सदा पेडू के नीचे के भाग के रोग से पीड़ित रहती हैं, उनको 'ह्‌म्' मंत्र के उच्चारण करने से बड़ा लाभ पहुँचेगा।

(क) 'हैम्' मंत्र का उच्चारण गुर्दे* को उत्तेजित करता है। सूर्य-नमस्कार में 'हैम्' मंत्र का बारबार का उच्चारण पिशाब उतारता है अथवा पिशाब उतारने की औषधि का काम करता है।

(ख) 'हौम्' मंत्र के उच्चारण का उपस्थेंद्रिय और जननेंद्रिय पर असर होता है और वह उनको अपने स्वाभाविक रूप से काम करने में सहायता देता है। जब इस वैज्ञानिक व्यायाम, सूर्य-नमस्कार के करने का अच्छा अभ्यास हो जायगा, तब यह अनुभव होगा कि स्नान करने के पूर्व जो आतें सुस्त थीं, वे अब आध घंटे के पश्चात् अर्थात् नमस्कार करने पर खुल गई हैं अथवा वे सुस्ती का त्यागन करके अपने स्वाभाविक कार्य में लग गई हैं।

(ग) छटवाँ मंत्र 'हः' है। यह सीने और गले को उत्तेजित करता है।

इस प्रकार ये बीज-मंत्र शरीर के मुख्य अंगों, यथा हृदय, पेड़ू, गला, तालू, श्वास-नलिका (सांस लेने की नली, जो फैंफड़ों से मिली हुई है) और मस्तिष्क आदि में संचालन तथा उत्तेजन उत्पन्न करते, रुधिर को शुद्ध करते और इन स्थानों के विकारों

---

* गुर्दा अंतड़ियों या आँतों का वह भाग है, जिससे पिशाब निकलता है।

तथा रोगों को दूर करते हैं। क़रीब क़रीब सब रोग या तो सिर, नाक, गले, दिल, फैफड़ों से उत्पन्न होते हैं या पेट से। जब ये सब अंग बीज-मंत्रों के द्वारा शुद्ध तथा विकार-रहित हो जाते हैं, तब सूर्य-नमस्कार करने में अंगों तथा इन्द्रियों के तीव्र रूप से आंदोलित होने के कारण शरीर के रुधिर-संचार में उत्तेजना उत्पन्न हो जाती है। जब सब अंग और इन्द्रियाँ स्वस्थ रुधिर के तीव्र संचार के कारण अपना अपना काम स्वाभाविक रूप से करने लग जाती हैं, तब वे केवल बाह्यरूप से रूप-स्वरूप, आकार-प्रकार तथा बल ही में उन्नति को प्राप्त नहीं होतीं, किन्तु अपने आन्तरिक गुणों, यथा सहिष्णुता तथा रोगनाशक शक्ति में भी उन्नति करती हैं।

अस्तु, सूर्य-नमस्कार-व्यायाम दुगना लाभ पहुँचाता है, जो इस अलौकिक व्यायाम का एक अद्भुत गुण है। इस सम्बन्ध में (अर्थात् दुगने लाभ में) और कोई अकेली व्यायाम-पद्धति सूर्य-नमस्कार की समता नहीं कर सकती।

सातवाँ प्रकरण

वाणी की प्रयोग-विधि

जो मनुष्य वेदों को नहीं मानते हैं अथवा सूर्य-प्रणामों (मित्राय नमः आदि) के उच्चारण के साथ वैदिक मंत्रों को सम्मिलित करना नहीं चाहते है, उनको बीज-मंत्रों को निम्नांकित रूप से उच्चारण करना चाहिए—

(अ)—(१) ओं ह्रां मित्राय नमः, (२) ओं ह्रीं रवये नमः, (३) ओं ह्रूं सूर्याय नमः, (४) ओं ह्रैं भानवे नमः, (५) ओं ह्रौं खगाय नमः, (६) ओं ह्रः पूष्णे नमः, (७) ओं ह्रां हिरण्यगर्भाय नमः, (८) ओं ह्रीं मरीचये नमः, (९) ओं ह्रूँ आदित्याय नमः, (१०) ओं ह्रैं सवित्रे नमः, (११) ओं ह्रौं अर्काय नमः, (१२) ओं ह्रः भास्कराय नमः।

(ब) (१)—ओं ह्रां ह्रीं मित्ररविभ्यां नमः, (२) ओं ह्रूं ह्रैं सूर्यभानुभ्यां नमः, (३) ओं ह्रौं ह्रः खगपुषभ्यां नमः, (४) ओं ह्रां ह्रीं हिरण्यगर्भमरीचिभ्यां नमः, (५) ओं ह्रूं ह्रैं आदित्यसवितृभ्यां नमः, (६) ओं ह्रौं ह्रः अर्कभास्कराभ्यां नमः।

(स)—(१) ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं मित्ररविसूर्यभानुभ्यो नमः। (२) ओं ह्रौं ह्रः ह्रां ह्रीं खग-पुष-हिरण्यगर्भ-मरीचिभ्यो नमः (३) ओं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः आदित्यसवित्रार्कभास्करेभ्यो नमः।

(द) ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः, ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः मित्र-रवि-सूर्य-भानु-खग-पुष-हिरण्यगर्भ-मरीच्यादित्य-सवित्रार्क-भास्करेभ्यो नमः। इसका तीन बार उच्चारण करना चाहिए।

(क) ओं श्री सवित्रे सूर्य्य नारायणाय नमः। यह पहिली आवृति की अन्तिम अर्थात् २५ वीं प्रणाम है।

जो ऋग्वेद और यजुर्वेद के मानने वाले हैं, उनको इन वीज-मंत्रों के साथ अपने मंत्रों को भी कहना चाहिए। यजुर्वेद के मानने वालों के लिए निम्नांकित मंत्र है—

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद्वरसदृतसद् व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्॥

[वा० यजुर्वेद १०। २४]

हंसः=सांस लेना और निकालना।

शुचिषद्=सब से पवित्र स्थान का निवासी।

वसुः=दूसरे के निवास-स्थान को सुखमय बनाने वाला।

अन्तरिक्षसद्=अन्तरिक्ष अर्थात् हृदय में रहने वाला।

होता=लेने और देने वाला।

वेदिषद्=वेदी अर्थात् हृदय में रहने वाला।

अतिथिः—सदा घूमने वाला अर्थात् वह, जिसके आने और जाने का कोई समय नियत न हो।

दुरोणसद्=संरक्षक तत्व में रहने वाला।

नृषद्=मनुष्य में रहने वाला।

वरसद्=उत्तम वस्तु में रहने वाला।

ऋतसद्=दिव्य नियम अथवा सर्व श्रेष्ठ आत्मा में रहने वाला।

व्योमसद्=तारा-गण में रहने वाला।

अब्जाः=जीवन-जल उत्पन्न करने वाला।

गोजाः=जीवन रूप शक्तिशाली इन्द्रियों का देने वाला।

ऋतजाः=दिव्य नियम का बनाने वाला।

अद्रिजाः=पूजनीय वस्तु का उत्पादक।

ऋतम्=सत्य

बृहत्=बड़ा

ये गुणवाची शब्द साधारणतः आत्मा अथवा जीवात्मा के लिए प्रयोग किये जाते हैं। और चूंकि वेदों में सूर्य* ही को सब जड़-जंगम अर्थात् चल-अचल का आत्मा माना है, इसलिए ये शब्द सूर्य के लिए भी प्रयुक्त हो सकते हैं।

---

* योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। [वा० यजुर्वेद ४०। १७] अर्थात् 'जो आत्मा सूर्य में है वह मैं ही हूं'।

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। [ऋग्वेद १। ११५। १]

अर्थात् 'सूर्य, जड़ जगत सब की आत्मा है'।

सूर्य-पूजकों का अन्तिम उद्देश्य अपनी आत्मा और जीवात्मा का एक कर देना है।

ऋग्वेद के मानने वालों को बीज-मंत्रों के साथ ये निम्नांकित तीन मंत्र कहने चाहिए—

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय॥ १॥
शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि।
अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं नि दध्मसि॥ २॥
उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह।
द्विषन्तं मह्यं रन्धयन्मो अहं द्विषते रधम्॥ ३॥

[ऋग्वेद १। ५०। ११—१३]

इन मंत्रों का क्रमशः यह अर्थ है—(१) हे सूर्य तुम, जिसके अनेक मित्र हैं और जो आज उदय होकर आज ही अति उच्च-स्वर्ग तक पहुँच गया है, मेरे हृदय के रोग को दूर करो और मेरे पीतवर्ण अर्थात् दुर्बलता का अपहरण करो। (२) मेरा यह पीतवर्ण तोतों और तारों पर पहुँचा दिया जाय अथवा हरीताल वृत्त को दे दिया जाय। (३) अपने विजेता बल से आदित्य (सूर्य) ऊंचा चढ़ गया है और मेरे हाथ में मेरे शत्रु को छोड़ गया है। मुझे इस शत्रु का शिकार न बन जाना चाहिए।

अपने अपने वेद-मंत्रों को बीज-मंत्रों के साथ उच्चारण करने से यह व्यायाम कुछ अधिक धीरे धीरे होने लगेगा। इससे यह लाभ होगा कि जिस अंग को तुम बलिष्ठ बनाना चाहते हो, उस पर तुम अधिक ज़ोर डालने तथा उसकी ओर अपने चित्त को एकाग्र करने में समर्थ हो सकोगे।

उन लोगों से जिनका वेद-मंत्रों में विश्वास नहीं है, हमारा यह निवेदन है कि आप लोग पूर्ण हार्दिक उत्साह के साथ प्रत्येक नमस्कार को करें और इस व्यायाम-शैली से पूरा पूरा लाभ उठाएं।

सूर्य-नमस्कार प्रत्येक मनुष्य का एक धार्मिक कर्तव्य है, जिसको उसे अपने प्रति तथा समाज के प्रति पालन करना है, न कि वह एक केवल शारीरिक व्यायाम। इसलिए, जिस प्रकार व्यायाम करने के लिए पहलवानों के लिए भोजनादि के नियम बतलाये जाते हैं, उसी प्रकार सूर्य-नमस्कार के अनुगामियों को किसी विशेष नियम के बतलाने की आवश्यकता नहीं है। बस इस सम्बन्ध में इतना बतला देना है कि यदि सूर्य-नमस्कार करने के बाद, यदि हो सके, तो एक आधा सेर गाय का दूध पी लिया जाय। इससे बहुत लाभ होगा। परन्तु हम यह भी

स्पष्ट कहे देते हैं कि यह दूध का पीना अनिवार्य नहीं है, अर्थात् ऐसा नहीं है कि इसको अवश्य पिया ही जाय। भोजन करने में, वही अपने पुराने दो समय के भोजन करने के नियम का पालन करना चाहिये और वीच में कुछ भी न खाना चाहिए। यह नियम सभी के पालन-योग्य है। यदि ऐसा किया जायगा, तो सूर्य-नमस्कार का करने वाला अजीर्ण अथवा वहु-भोजन करने के रोग से कभी पीड़ित न होगा।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि सूय-नमस्कार के प्रति दिन के करने से दूसरे खेलों के खेलने के लिए, जिनमें शारीरिक वल की आवश्यकता होती है, न केवल रुचि ही उत्पन्न होती है, किन्तु उनके खेलने में जो आनन्द प्राप्त होता है उसकी भी वृद्धि होती है।

आठवाँ प्रकरण

एक यूरुपीय विद्वान का अनुभव

बीज-मंत्रों की अद्भुत शक्तियों के विषय में जो हमने ऊपर वर्णन किया है, उसके सम्बन्ध में जब तुम एक युरुपीय विद्वान् श्री० बी० एम० लैजर लैजरिश्रो का निम्न लेख पढ़ोगे, तब तुमको उनमें विश्वास होगा। आपका यह लेख 'फ़िज़िकल कलचर' नाम की एक अंग्रेज़ी मासिक-पत्रिका के अप्रैल, सन् १९२४ ई० के अंक में प्रकाशित हुआ था। वह लेख यह है—

"मैंने अपना स्वास्थ्य श्वास-क्रिया के अभ्यास से प्राप्त किया है। यदि आप भी ऐसा करें, तो आप भी स्वस्थ हो सकते हैं"।

मेरा जन्म वाइना नगर (यूरूप के आस्ट्रिया देश की राजधानी) में हुआ था। मैं अपनी बाल्यावस्था में अति कोमल शरीर का था और मुझ में अति अध्ययन करने की प्रवृत्ति थी। अति अध्ययन शील होना भी एक दुर्व्यसन ही है। परन्तु यह मेरे लिए एक गुण ही समझा जाता था। मुझे पुस्तकों का भोजन इतना कराया गया कि मुझे मानसिक तथा शारीरिक, दोनों प्रकार का भयंकर अजीर्ण हो गया और उसने मुझे मृत-प्राय अवस्था को पहुँचा दिया।

मैं १८ वर्ष की अवस्था तक कभी नीरोग अवस्था में नहीं रहा। १८ वर्ष की अवस्था में मेरा रोग इतना बढ़ गया कि मुझे

अति कष्टकर गठिया हो गई और डाक्टरों ने मेरी दशा को असाध्य बतला दिया।

परन्तु एक दिन मेरे हाथ एक बात लग गई। मैंने यह अनुभव किया कि श्वास भी एक चीज़ है। मुझे यह विदित हो गया कि न तो यह कोई आध्यात्म-विद्या का विषय है और न किसी प्राचीन शास्त्र का शब्द, किन्तु यह एक जीवित तत्त्व है, जिसके लिए मैं एक अज्ञानी की भांति उत्सुक हो रहा हूं।

श्वास जीवन है

श्वास ही जीवन है। श्वास को वशीभूत करो और इस क्रिया को एक विशेष कला में परिणत कर दो। तब तुम को यह ज्ञात होगा कि हमको तो वह श्वास-नलिका प्राप्त हो गई, जो हमारे सम्पूर्ण अस्तित्व का भेद खोलती है। यदि तुमको यह ज्ञात हो जाय कि यह नालिका कहाँ मिलेगी, तो फिर उसका चलाना तो आसान है। मेरे जीविन का काम ही यह है कि मैं दूसरों से इस श्वास-नलिका का पता लगवाऊँ और उसके प्रयोग को एक कला का रूप दूँ। इसलिए, मैं काल के गाल से निकल आने की अपनी कहानी को यहाँ लिखता हूं। इस लेख में मैं जो कुछ लिख रहा हूं, वह कोई सिद्धान्त नहीं है, किन्तु वह एक अनुभूत बात की कथा मात्र है। यदि तुम भी ऐसा करोगे, तो तुम भी इस सम्बन्ध में अपनी एक कहानी सुनाओगे। यह मैं जानता हूं कि प्रायः श्वास-नलिका का प्रयोग करना एक कठिन कार्य है, परन्तु मेरा अनुभव यह है कि यह इतना आसान है, जितना सांस का लेना। इसीलिए, मैं अपनी कहानी को कह रहा हूं—

बच्चा क्या कहता था ?

जब मैं १८ वर्ष का था और गठिया रोग से पीड़ित था, तब

एक दिन मेरी एक पड़ोसिन अपने एक बच्चे को हमारे घर लाई और उसको हमारे यहाँ छोड़ कर चली गई। यह बच्चा हमारे घर कई घंटे तक रहा। बच्चा खूब स्वस्थ था। मेरा ध्यान उसके स्वास्थ्य तथा सुन्दरता को देखकर उसकी ओर आकर्षित हुआ और मैं कुछ समय तक अपना दुख भूल गया। यह बच्चा चित, छत की ओर मुख किये हुए पड़ा हुआ था और 'ला ला' कह रहा था।

मैंने अपनी नौकरानी को बुलाया और उससे कहा कि इस बच्चे के कपड़े उतार कर मेरे पास ले आओ। नौकरानी ने बच्चे के कपड़े उतारे और उसको मेरे बिस्तर पर रख दिया। मैंने बिस्तरे से कुछ उठकर, पहिले उस सुन्दर बच्चे को खूब दिल भर कर देख कर अपनी आंखों को तृप्त किया। बच्चे को देख कर यह ज्ञात होता था कि यह अभी वैसा ही है जैसा कि ईश्वर ने उसे बनाया था। अभी उस पर किसी का प्रभाव नहीं पड़ा था। मैंने उसकी दिव्य मूर्ति का अपने जर्जरीभूत, कृश एवं शववत् शरीर से, जो इतना कुरूप था कि मैं स्वयं उसका स्वामी होता हुआ भी उससे घृणा करता था, मिलान किया।

बच्चे ने मेरी ओर देखा और फिर उसके बाद उसी प्रकार 'ला ला ला' गाने लगा। मैंने बड़े ध्यान से उसके इस गाने को सुना। मुझे एक बात ज्ञात हुई कि जब जब वह बच्चा 'ला ला' कहता था, तब तब उसकी ऊपर की पसलियाँ चलती हुईं दिखलाई देती थीं और उन पसलियों के अतिरिक्त और कोई भाग नहीं चलता था। मैंने स्वयं भी 'ला' अक्षर को कहा और वही प्रभाव उसका मुझ पर भी हुआ। यह मुझे बड़ा रुचिकर मालूम हुआ। मैंने इसके बाद दूसरा अक्षर 'पू' कहना शुरू किया, जिससे मुझे यह अनुभव हुआ कि इस अक्षर के उच्चारण से

और भी नीचे के अंग में उत्तेजना होती है। तब मैंने 'पू' अक्षर को उस बच्चे से भी कहला कर देखा। जब वह उसको कहने लगा, तब मुझे उसके शरीर को देखकर ज्ञात हुआ कि 'पू पू' कहने से उसके पेड़ू में उत्तेजना पैदा होती है।

मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि 'ला' के उच्चारण से सीने के ऊपर के भाग में और 'पू' के उच्चारण से पेड़ू में उत्तेजना होती है। मैंने जब इस पर विचार किया, तब मैं इस परिणाम पर पहुँचा कि अक्षर के उच्चारण ही से शरीर के और भाग पर भी प्रभाव पड़ता है। यह निश्चय करके मैं इस बात को समझ गया कि इन अक्षरों का बार बार का उच्चारण बड़ा महत्व रखता है।

मुझे इन 'अक्षरों' के उच्चारण से दो बातें विदित हुईं—(१) बच्चा जब 'ला' अक्षर को बारबार कह रहा था, उस समय वह प्रसन्न था और (२) उसके उच्चारण का प्रभाव उसके शरीर पर पड़ रहा था। मैंने यह भी मालूम किया कि बच्चा इस 'ला' अक्षर को बिना सांस लिए हुए बहुत समय तक कहता रह सकता था और जब उसके फैंफड़े सांस से खाली हो जाते थे, तब वह सांस भर लेता था और फिर 'ला ला' कहने लग जाता था। इसका एक फल तो यह होता था कि वह बहुत देर तक अपने फैंफड़ों में वायु को रोके रहता था और दूसरा यह कि उसके पेट और डायफ्राम * के पुट्ठे देर तक खिंचे हुए रहते थे।

बच्चे का अनुकरण

मैंने इस घटना के उपरान्त कई स्वर और अक्षरों का उच्चारण

---

*शरीर का वह भाग, जो सीने और पेट के बीच में होता है। यह मांस का बना हुआ है और इसमें पुट्ठे भी होते हैं।

आरम्भ किया । मैं अपने बिस्तरे पर बच्चे की भांति पड़ा हुआ (बीमार तो मैं था ही) और प्रकृति पर विश्वास रक्खे एक एक अक्षर को कई कई मिनट तक कहता रहता था । आरम्भ में, मैं इस उच्चारण के परिश्रम को सहन न कर सका । उससे मेरा सिर घूमने लगता था । परन्तु धीरे धीरे मुझे अभ्यास हो गया । इन अक्षरों के उच्चारण के साथ साथ मैं जिस एक और बात का ध्यान रखता था, वह मेरी मनोवृत्ति अथवा चित्त-वृत्ति थी, जिसके विषय में मेरा यह विचार था कि इसका अक्षर से अवश्य सम्बन्ध है । जैसे 'ई' अक्षर के कहने से स्वभावतः मनोभाव प्रफुल्लित तथा प्रसन्न होता है और 'औ' के उच्चारण से गम्भीर, परन्तु मलिन नहीं ।

जब मैं कुछ समय के उपरान्त गठिया से अच्छा हो गया, तब मुझे यह निश्चय नहीं था कि मेरी इस उच्चारण क्रिया का भी इससे [गठिया के अच्छे होने से] कुछ सम्बन्ध है । परन्तु इस सम्बन्ध में मुझे तनिक भी शंका न थी कि इस क्रिया का मेरे मनोभाव पर बड़ा प्रभाव पड़ा है । परन्तु कुछ दिनों के पश्चात् मुझे यह निश्चय रूप से अनुभव हो गया कि मेरे भीतर कुछ चीज स्वयं तैयार हो रही है । मुझे यह अनुभव होने लगा कि मेरा सब शरीर अपने स्वाभाविक रूप में चल रहा है और कुछ स्वर, जिनका मैं उच्चारण करता हूं, स्पष्ट रूप से मेरे अङ्गों पर अपना प्रभाव डालते हैं । उदाहरणार्थ—'ई' स्वर के उच्चारण करने से मेरे गले और श्वास-नलिकाओं से बलग़म (कफादिमल) निकलता था । यह बलग़म इन जगहों से तब तक निकलता रहा, जब तक ये बिलकुल अपने स्वाभाविक स्वस्थावस्था में नहीं पहुँच गईं । यहां यह प्रश्न होता है कि ये इस अवस्था को कैसे प्राप्त हुईं ? इस प्रश्न के उत्तर में मुझे यही कहना है कि शायद इस स्वर-

उच्चारण-क्रिया को उत्साह के साथ करने ही से ऐसा हुआ। मेरा यही विश्वास था कि शायद एक स्वर एक अंग पर और दूसरा स्वर एक दूसरे अंग पर प्रभाव डाल सके और शायद ये भिन्न प्रकार के स्वर, जिनका में उच्चारण कर रहा हूँ मेरे सम्पूर्ण रोगी शरीर को स्वस्थ बना दें। इस स्वर-उच्चारण -क्रिया के करने से मुझे रुधिर-सचार तथा सहायक-तंतुओं (धमनियों) के परिवतंन को स्वेच्छानुसार वश में करने का एक मार्ग भी मिला। यह मार्ग ऐसा था, जिसके द्वारा शरीर के उन दुर्बल भागों में जहां रुधिर की आवश्यकता होती थी, वहां रुधिर पहुँच सकता था।

तीस वर्ष का प्रमाण

उस समय, इस सब के विषय में मुझे निश्चय नहीं था। मैं उस समय इस सम्बन्ध में केवल आशा तथा विश्वास ही कर सकता था। परन्तु आज ३० वष के उपरान्त मेरा इस सम्बन्ध में दृढ़ निश्चय हो गया है। क्योंकि मैंने इसको सैकड़ों बार प्रयोग में लाकर परीक्षा करली है। मैं इससे अपने रोग को भगा चुका हूं और दूसरों के रोगों को दूर कर चुका हूं। आज मैं अपने शरीर के भीतर रुधिर को किसी अंग की ओर उसके सुधार अथवा उसको स्वस्थ रखने के अभिप्राय से अपनी इच्छानुसार भेज सकता हूं।

तीस वर्ष के अनुभव और अन्वेषण के उपरान्त, मैंने जो इस सम्बन्ध में एक कला को विकसित किया है, वह यथार्थ है, सरल है और ऐसी सरल है जैसे सांस लेना—यह वास्तव में ऐसी ही सरल है, जैसे 'ला ला' कहना।

शरीर में यथेष्ट मात्रा में सुन्दर स्वस्थ रुधिर का संचार हो,

यह शरीर की एक प्रधान आवश्यकता है और यही प्रत्येक चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य भी है। प्रत्येक चिकित्सा की विधि में इसी बात के लिए प्रयत्न किया जाता है कि शरीर के अमुक शुष्क तथा रोगी अंग में साधारण रूप से रुधिर-संचार होने लगे। और यह स्मरण रखना चाहिए कि मृत्यु का मुख्य कारण रुधिर-संचार का बंद हो जाना ही है, जिसको हम अभाग्यवश अपने अनेक कुकर्मों से ला उपस्थित करते हैं।

सर्व प्रथम, मैं इस बात को स्पष्ट रूप से कह देना चाहता हूं कि वह कला, जिसके द्वारा एक मनुष्य अपने शरीर के रुधिर-संचार को वशीभूत करने में समर्थ हो सकता है अर्थात् उसको अपनी इच्छानुसार इधर उधर कर सकता है, स्वास्थ्य के लिए राम-बाण का काम करेगी। ऐसी कला स्वास्थ्य के लिए एक मात्र साधन ही नहीं है, किन्तु यह और सब साधनों में सब प्रथम, आवश्यक तथा महत्व-पूर्ण साधन है। बस, इस प्रकार जो मनुष्य अपने रुधिर-संचार को अपने आधीन कर लेगा, वह उस एंजिन ड्राइवर के समान हो जायगा, जिसका हाथ सदा एंजिन की श्वास-नलिका पर रहता है।

मैंने स्वर-उच्चारण-क्रिया के द्वारा बस उस श्वास-नलिका को प्राप्त कर लिया है, जिससे सब शरीर वश में रहता है और जिसका सम्पूर्ण रुधिर-संचार पर अधिकार है।

कल्पित अथवा वास्तविक

अब इस श्वास-नलिका के विषय में प्रश्न यह है कि क्या यह वास्तव में रुधिर-संचार को वशीभूत करती है अथवा ऐसी मेरी कोरी कल्पना ही है, जिससे मैं, 'विश्वासो फलदायकः' के अनुसार थोड़ा सा लाभ उठा लेता हूं। मैं अपने ३० वर्ष

के अनुभव के बल पर इस प्रश्न का यह उत्तर देता हूं कि श्वास-नलिका पर मेरा वास्तविक अधिकार है और इस प्रमाण के विषय में यही कहा जा सकता है कि हाथ कंगन को आरसी क्या ? अर्थात् जिसकी इच्छा हो, वह स्वयं करके देख ले। यदि तुम खड़े होकर अपनी नासिका द्वारा आठ दस बार खूब गहरा सांस लो और अपने फैफड़ों को यथा-शक्ति खाली कर दो, तो तुम अपने अंदर कुछ उथल पुथल का अनुभव करोगे। यदि तुम को व्यायाम का अभ्यास नहीं है, तो ऐसा करने से तुम्हारा सिर घूमने लगेगा—मानों तुमको प्राण-वायु (आक्सिजन) ने नशा कर दिया हो। यदि तुमसे उस समय कोई यह कहे कि यह तो तुम्हारी कल्पना का फल है, तो तुम उस पर अवश्य हँस दोगे। तुम उस समय यह समझ जाओगे कि वह उथल-पुथल तुम्हारे गहरे सांस लेने के कारण हो उठी है। बस, यही बात तुमको अधिकांश में मेरी स्वर-उच्चारण-क्रिया के सम्बन्ध में भी समझ लेनी चाहिए। यह क्रिया और सब प्रकार की श्वास-क्रियाओं से भिन्न है और इसके फल भी, जो बड़े महत्व के हैं, दूसरे ही हैं और आक्सिजन को अन्दर लेजाने की क्रिया (प्राणायाम) से भी भिन्न हैं। उदाहरणार्थ—यह, जैसा मैं पहिले कह चुका हूं, ज्ञान-तंतुओं (धमनियों) को उत्तेजित करती है। गायक लोग इस प्रकार की उत्तेजनाओं का अनुभव किया करते हैं। इसलिए, यह भी एक कारण है कि संगीत को लाभदायक माना जाता है। ज्ञान-तंतुओं के वश में रुधिर-संचार और रिसने वाली ग्रंथियां तथा शरीर के प्रधान अंगों के काम हैं और मेरी स्वर-उच्चारण की क्रिया इन ज्ञान-तंतुओं को चलाती है।

मुझे शायद इस सम्बन्ध में अभी और भी स्पष्ट रूप से बतलाना चाहिये। जो मनुष्य अपनी मुट्ठियों को बांध लेता तथा

भौओं को चढ़ा लेता है, वह बहुत जल्द अपनी मानसिक तथा शारीरिक शान्ति को त्याग कर क्रोधाग्नि में प्रवेश हा जाता है। उसका मुख लाल पड़ जाता है, उसके हृदय की धड़कन बढ़ जाती है, उसके गुर्दों की ग्रंथियों से रुधिर में उत्तेजना उत्पन्न हो जाती है और उसका रुधिर-संचार बदल जाता है। इस सब का अभिप्राय यह है कि सहायक-तन्तु उत्तेजित हो गये हैं। इसी प्रकार वह मनुष्य, जो हँसते समय अपने होटों को एक दूसरा रूप देता है और अपनी आँखों को मींचता है, अपने मनोभाव को बदलता है। मनोवृत्ति का यही विकार प्रेम, प्रसन्नता, भय तथा शोक आदि के भावों में पाया जाता है। मनोवृत्ति के ये सब परिवर्तन मज्जा तन्तुओं के उत्तेजन ही के कारण होत हैं।

हमारा दैनिक भाषण जिसके द्वारा हम अपने विचार-भावों को प्रकट करते हैं 'अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ,' इन १६ स्वरों पर निर्भर है। बेला बाजा, जो मनुष्य के कंट के अतिरिक्त संसार के और सब बाजों से अधिक भावोत्पादक है, एक स्वर-उच्चारण-यंत्र के सिवाय और क्या है ? बेला के स्वर हमारे शरीर के अंगों की उत्तेजनाओं ही के सामान हैं। यदि तुम अपने कंठ द्वारा अपने शरीर में मनोवाञ्छित उत्तेजनाएं (लहरें) उत्पन्न करना चाहते हो, तो भला तुमको ऐसा करने से कौन रोक सकता है ?

क्या तुमने भी उस समय, जब कि बीन बज रहा हो, किसी कुत्ते, हिरन अथवा सांप की दशा को देखा है ? बीन को सुन कर उनके अन्दर लहरें उठती हैं। वह मनुष्य वास्तव में बड़ा साहसी समझा जायगा, जो इन भावोत्पादक, सार्थक तथा गुप्त मंत्र-स्वरूप स्वरों के प्रभाव तथा प्रयोगों को व्यर्थ बतलाएगा।

बस मेरा ऐसा आधार है, जिस पर मेरी श्वास-क्रिया का

महत्व निर्भर है। यदि तुम इस का अनुशीलन करना चाहते हो, तो निम्नांकित विधि को ग्रहण करो।

स्वर और स्वास्थ्य

सबसे पहिले तुमको किसी स्वर की भावुकता के साथ कल्पना करनी चाहिए। तब तुमको उस को उच्चारण करना चाहिए। प्रत्येक स्वर का जब इस प्रकार उच्चारण किया जायगा, तब वह अपना विशेष प्रभाव दिखलाएगा।

'ई' का प्रभाव तालू, गले तथा मस्तिष्क पर पड़ता है।

'ए' का उच्चारण गले और श्वास-नलिका का उद्भव-स्थान तक पहुंचता है।

'आ' के उच्चारण से फेफड़ों के ऊपरी भाग तथा सीने पर प्रभाव होता है।

'ओ' का उच्चारण नीचे के फेफड़ों, सीने और डायफ्राम (पृष्ठ २९ का फुटनोट देखिए) पर प्रभाव डालता है।

'ऊ' जिगर, पेट और अंतड़ियों को उत्तेजित करता है।

मैंने सब मिलाकर ऐसे ३१ प्रकार के भिन्न भिन्न उच्चारणों का अभ्यास किया है, जिन को प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकतानुसार प्रयोग में ला सकता है। इनकी प्रयोग-विधि बहुत सरल है, जिस की निम्नांकित चार अवस्थाएं हैं—

(१) स्वर के उच्चारण के लिए तुमको इस प्रकार तैयार होना चाहिए जैसे तुम किसी धर्म कार्य को करने के लिए तैयार होते हो। इससे मेरा यह अभिप्राय है कि तुम अपने विचारों को उस विशेष भाव पर एकत्रित तथा एकाग्र करदो, जो तुम्हारे स्वर के उपयुक्त अथवा उसका सहयोगी भाव है। ऐसा करना

अति आवश्यक है। विना इसके बहुत कम लाभ की प्राप्ति होगी। कल्पना करो कि तुम पहिले 'ई' स्वर से आरम्भ करते हो। 'ई' स्वर का सहयोगी भाव आनन्द का भाव अथवा प्रसन्नता का है। इसलिए, इसका उच्चारण करने से पहिले तुम अपने बाहर-भीतर प्रसन्नता के भाव आच्छादित करलो, मुसकराहट से तुम्हारे होट कुछ खुले हुए हों, और तुम्हारी अधखुली आंखों से प्रसन्नता का भाव प्रकट हो रहा हो। इस सब आनंद की वृत्ति में न तो कहीं तनिक भी गम्भीरता का भाव होवे और न इस में कोई भेद तथा किसी प्रकार का अभाव ही हो। बस, इस वृत्ति को पूर्ण यथार्थ रूप से प्राप्त करना चाहिए और यदि तुम 'ई' की वृत्ति के साथ 'औ' की अथवा किसी अन्य स्वर की वृत्ति को मिलाते हो, तो ऐसा करने से तुम्हारे मन तथा शरीर को पूर्ण रूप से लाभ न पहुँचेगा।

(२) जब तुम उक्त प्रकार से तैयार होजाओ, तब तुमको मुख को बंद करके नासिका द्वारा भीतर की ओर सांस लेना चाहिए। सांस गहरा और पूरा लिया जावे और उसके उपरान्त 'ई' का उच्चारण किया जावे।

(३) जब 'ई' का उच्चारण हो चुके, तब सांस को वहीं का वहीं एक, दो, तीन अथवा चार सैकंड तक अपनी सामर्थ्य के अनुसार रोक लिया जावे। तुमको आगे धीरे धीरे इस रोकने के समय को बढ़ाना चाहिए। जब तुम सांस को रोके रहो, तब तुमको स्पष्ट रूप से स्वर पर ध्यान रखना चाहिए। ऐसा करने का एक कारण है, जिस को तुम उस समय जानोगे, जब कि तुम इस क्रिया का अच्छा अभ्यास कर लोगे। जिस स्वर विशेष का तुमने प्रयोग किया है, उसके उच्चारण करने से उन अंगों पर जिन पर उस का प्रभाव पड़ता है, खिंचाव पड़ता है और उन के रुधिर

की मात्रा में भी उन सहायक तंतुओं के संचालन से, जिनको तुमने स्वर के सहयोगी भाव द्वारा पहिले से उत्तेजित कर लिया है, कुछ परिवर्तन होजाता है। यदि तुमको मेरा यह कथन मिथ्या प्रतीत होता है, तो मेरे पास इसका कोई इलाज नहीं है। मैं तो तुम्हारे सन्मुख उस बात को उपस्थित कर रहा हूं, जो वास्तव में होती है। इसकी वैज्ञानिक परीक्षा भी हो चुकी है। इस क्रिया को वाइना नगर के एक प्रोफ़ेसर श्रीयुत हाजेक ने एक्सरे* लगाकर देखा भी है। इसलिए, इस सम्बन्ध में अब शंका-आशंका करना व्यर्थ है।

आन्तरिक संदेश

रुधिर की मात्रा में इस प्रकार के परिवर्तन का होना एक प्रकार की आन्तरिक ऊर्ध्वगामिनी उत्तेजना है। इसके द्वारा शरीर के भीतर के दूषित पदार्थ दूर होते हैं। और वह उन सैलों के लिए, जिनका भरण-पोषण भलीभाँति नहीं हुआ है और जो भूख के कारण मृत-प्राय हो रही हैं, भोजन की सामिग्री ले जाता है। यह परिवर्तन मंद गति से होता है। और यदि कुछ दिनों तक इसको बार बार पैदा किया जावे, तो इससे आश्चर्य-जनक फल प्राप्त होते हैं।

(४) जब तुम स्वर का अनुभव-पूर्वक उच्चारण कर चुको और उसके उपरान्त उस पर ध्यान रखते हुए सांस को भीतर खींच लो, तब तुम को स्वर का उच्चारण करते हुए फिर सांस को बाहर निकालना चाहिए। परन्तु स्वर पर ध्यान अवश्य बना रहे। उदाहरणार्थ—ई ई ई ई ई इस प्रकार एक ही सांस में कहते

* एक प्रकार का अन्वीक्षण यंत्र है, जिसके द्वारा शरीर के भीतर के अन्दर का भाग देखा जाता है।

हुए ही चले जाओ, यहां तक कि तुम्हारे फेंफड़े इस प्रकार सांस से खाली हो जावें, जिस प्रकार तुम उनको एक साथ सांस बाहर निकाल कर बिना किसी कष्ट के खाली कर देते हो। इस क्रिया को, भोजन करने के पूर्व, नित्यप्रति करने की कोशिश करना चाहिए।

इसी प्रकार एक सांस में 'ह ऊ ऊ ऊ ऊ'—'ह ऊ ऊ ऊ ऊ ऊ' का उच्चारण करना चाहिए। यहाँ 'ह' के परिवर्तन पर ध्यान देना चाहिए। 'ह' के उच्चारण से एक नई प्रकार की उत्तेजना होती है, जो बड़े महत्व की है। 'ऊ ऊ ऊ ऊ ऊ' का उच्चारण इस प्रकार करना चाहिए, जैसे मानों दोनों होटों द्वारा कोई वस्तु फूंकी जा रही है। इस 'ऊ' स्वर का सहयोगी भाव गम्भीरता है जिसका अर्थ निराशा अथवा शोक नहीं है। मेरा यह दृढ़ता-पूर्वक कहना है कि इस क्रिया को ठीक उसी प्रकार से करना चाहिए, जिस प्रकार मैंने ऊपर बतलाया है। इसको आसानी से ठीक रीति से भी किया जा सकता है और ग़लत रीति से भी।

इस छोटे से लेख में सब प्रकार के स्वर-समुदायों तथा उनके प्रयोगों का देना सम्भव नहीं है। मैं उनमें से यहाँ पर बस उन्हीं का उल्लेख करता हूँ, जो सब से अधिक महत्व-पूर्ण हैं। ये ही, बहुत से लोगों को जो आवश्यकता है, उससे कहीं अधिक की, पूर्ति कर देंगे।

'ई' स्वर का प्रभाव शरीर के ऊपरी भाग पर पड़ता है। यह दिल और दिमाग़ पर असर करता है। यह सिर-दर्द और दिल के रोगों के लिए विशेष रूप से लाभदायक है। इसका ऐसे मनुष्यों पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है, जो उदास-वृति तथा क्रोधी स्वभाव के होते हैं।

'ए' के उच्चारण से गला, श्वास-नलिका का उद्गम-स्थान, और श्वास-नलिका के उद्गम-स्थान की खिड़की शुद्ध होती है। इस स्वर का प्रयोग विशेष रूप से गानेवालों, अध्यापकों तथा उन लोगों में होता है, जिनको अधिक देर तक बोलना पड़ता है। यह अन्दर की नलकियों के अंदर की लुआवदार झिल्ली को स्वस्थ बनाता है। इसका प्रभाव गले की ग्रंथियों पर भी पड़ता है। ये ग्रंथियाँ टेंटुए के नीचे होती हैं। इन ग्रंथियों के बढ़ जाने से घेंघे का रोग हो जाता है। मैंने इस रोग के सैकड़ों रोगियों को इस स्वर के प्रयोग से अच्छा होते देखा है।

'आ' के उच्चारण से गले का वह भाग, जिसमें होकर खाना जाता है, ठीक होता है, ऊपर वाली तीनों पसलियाँ संचालित होती हैं और मस्तिष्क में उत्तेजना उत्पन्न होती है। यह हृदय के संचालन को नहीं रुकने देता और फैंफड़ों के उन ऊपरी भागों पर जहाँ पर साधारणतः क्षयीरोग आरम्भ होता है, प्रभाव डालता है। इस स्वर का अभ्यास उन लोगों को तो अवश्य ही करना चाहिए, जिनको क्षयीरोग होने की सम्भावना है। इस स्वर का उच्चारण उन लोगों को भी करना चाहिए जो झुक कर अँधेरे कमरों में काम करते हैं।

'आ' और 'औ' का संयुक्त उच्चारण कुछ गहरा जाता है। यह सीने के मध्य भाग को उत्तेजित करता है। यह निमोनिया अथवा प्लूरैसी* के लिए बहुत लाभदायक है और यह उन चिह्नों को भी दूर कर देता है, जो इन रोगों के कारण पैदा हो जाते हैं।

---

* यह एक रोग है जिसमें फैंफड़ों के ऊपरी भाग की दुहरी झिल्ली में सूजन आ जाती है और उस सूजन के कारण झिल्ली के दोनों परतों के बीच में पानी भर जाता है।

'औं' से हृदय पर प्रभाव पड़ता है। इसके उच्चारण में भावोत्पादक भाव रहता है। इसका प्रयोग ख़ूब तैयारी के साथ करना चाहिए।

मैंने हृदय के लिए एक विशेष क्रिया को निकाला है, जो यह है—'म म म म—प औ म म म म म'।

इसको दिन में केवल एक बार करना चाहिए और जो मनुष्य दुर्बल हृदय के हैं, उनको इसे तब तक नहीं करना चाहिए, जब तक उन्हें इस आगे लिखी क्रिया का अभ्यास न हो जाय 'म म म प औ म म म प ए ए ए ए ई ई ई ई ई ई ई'*

'औ इ' इसका प्रभाव डायफ्राम, जिगर, पेट और अंतड़ियों पर पड़ता है।

'औ औ' 'ई ई' के उच्चारण से गुर्दों पर असर होता है और इससे सब ख़राबी दूर होती है।

'ऊ' का असर पेड़ू पर होता है। मैं इसके द्वारा क़ब्ज़ को, कितने ही दिनों का क्यों न हो, दूर कर सकता हूँ। यह स्त्रियों की कोख के लिए बहुत उपयोगी है।

'औ औ ई ई' के उच्चारण का सीधा उपस्थेन्द्रिय पर असर होता है। यह इस अंग को, जिसकी कभी परवा नहीं की जाती, ठीक रखता है।

स्वर-उच्चारण-क्रिया के शुरू करनेवालों को पहिले 'ई'

---

* यह सदा स्मरण रहे कि इस प्रकार के अक्षर एक सांस में बोले जाते हैं। एक अक्षर को कई बार इसलिए लिखा है कि उसके उच्चारण करने में इतना समय लगे, जितना उसके इतने बार के उच्चारण में लगना चाहिए, परन्तु उच्चारण वही एक सांस में हो।

और 'औ' से शुरू करना चाहिए और इन दोनों स्वरों में से हर एक का भोजन करने से पहिले पांच पांच बार उच्चारण करना चाहिए। जो बीमार हों, उनके लिए केवल तीन तीन बार ही का उच्चारण काफ़ी होगा। इनके बाद 'ई', 'ऐ' और 'अ' का अभ्यास करना चाहिए। मैं इन तीनों को जीवन की 'त्रिताल' कहता हूँ। क्योंकि ये प्रत्येक मनुष्य के लिए ऐसे ही उपयोगी हैं, जैसे ताल संगीत के लिए।

नवाँ प्रकरण

अविश्वासियों को उत्तर

पेशवाओं के पतन के साथ साथ बापू गोखलों, भवनराव प्रतिनिधियों तथा महादाजी सिंधियों की वीर जाति का भी लोप हो गया। इनके उत्तराधिकारी सरकारी कर्मचारी हुए, जिनका जन्म, शिक्षा तथा रीति-रिवाज अपने पूर्वजों से पूर्णरूप से भिन्न हुए। सरकारी कर्मचारियों की इस नयी जाति ने अपनी संतान के सन्मुख अपने स्वास्थ्य को खोकर अध्ययन करने, परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने और सरकारी पदों को प्राप्त करने का आदर्श उपस्थित किया। वे अपने पड़ोसियों के स्वस्थ तथा बलिष्ठ बालकों को देख कर हँसते तथा घृणा करते थे और प्रसन्न होकर उन पर यह आक्षेप किया करते थे कि ये अपने उन भाइयों के घरों में, जो इनसे अधिक भाग्यवान् हैं अर्थात् जो परीक्षा पास करके सरकारी नोकर हो गये हैं, जल भरने अथवा इसी प्रकार के अन्य नीच काम करने के योग्य हैं। व्यायाम के सम्बन्ध में इस प्रकार की मनोवृति उपरोक्त जाति की गत दो या तीन पीढ़ियों में प्रधान रूप से रही। यह निश्चय रूप से नहीं कहा जा सकता है कि यह भाव इस जाति में से अब पूर्ण रूप से निकल गया है। परन्तु इस समय आशा के लक्षण स्पष्ट दृष्टि-गोचर होते हैं। हमारे नवयुवक तथा युवतियों की खेल-कूद तथा स्काउट-आंदोलन में रुचि देखी जाती है। परन्तु अभी इस सम्बन्ध में शंका है कि इन आंदोलनों ने हमारे नवयुवक तथा युवतियों में वास्तविक

शारीरिक स्वास्थ्य तथा सामर्थ्य के प्रति सच्चे प्रेम को वृद्धि कर दी है।

एक पराजित देश का आत्म-विश्वास धीरे धीरे चला जाया करता है और वह अन्ततः अपने विजेता के वाह्याडम्बरों तथा दुर्व्यसनों का तो प्रायः अंधानुगामी हो जाता है, परन्तु देश-भक्ति तथा एकता आदि उसके (विजेता के) स्वाभाविक गुणों का अनुगमन नहीं करता। हमारे देश में इस पतन-काल में जिनके आत्म-विश्वास की मात्रा विलुप्त हो चुकी है, वे मनुष्य अपनी प्राचीन संस्कृति पर प्रसन्नता-पूर्वक आक्षेप करते हैं। बहुत से हमारे देश-वासियों पर इस भ्रम-जनक तर्क का प्रभाव पड़ा हुआ है कि यदि हमारी सभ्यता अच्छी और सच्ची होती, तो हम इस वर्तमान शोचनीय अवस्था को प्राप्त न होते। एक वार हिन्दू-विश्वविद्यालय के उपाधि-वितरण के अवसर पर बरौदा राज्य के महाराजा संजीवराव गायकवाड़ जैसे विद्वान तथा सुशिक्षित हमारे देशवासी ने भी हमारी प्राचीन सभ्यता को हीन बतलाया था। तब फिर इसमें आश्चर्य ही क्या है, जब हमारे देश के साधारण आदमी इस प्रकार का मत रक्खें, विदेशियों का क़रीब क़रीब सभी बातों में अंधे बन कर अनुकरण करें और उनके खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने, बात-चीत तथा चाल-ढाल आदि में न केवल उपहास-योग्य अनुकरण ही करें, किन्तु यह भी सोचें कि हमारे धार्म्मिक विचार तथा रीति-रिवाज पश्चिमी देश के समान ही हो जाने चाहिए? परन्तु हम अपने साधारण भाइयों से, जिनको यह ज्ञान भी नहीं है कि हमारे प्राचीन वेदिक, पौराणिक तथा वैज्ञानिक साहित्य में क्या क्या पुस्तकें हैं और उनके प्रतिपादित विषय क्या हैं, यह आशा नहीं कर सकते हैं कि वे अपने आर्य-साहित्य के रहस्यों तथा सत्यों को जान सकते

तथा उनका अन्वेषण कर सकते हैं। अज्ञान ता इनको अपनी सभ्यता से है ही, परन्तु इस पर भी ये धृष्टता यह करते हैं कि ये अपने वेद और शास्त्रों की निन्दा करते हैं, अपनी प्राचीन सभ्यता का विरोध करते हैं, अपने पुराणों को गप्पाष्टक बतलाते हैं, और निदान, ये अपनी प्राचीन सभ्यता को त्यागते अथवा उसके त्यागने का प्रयत्न करते हैं। बस, पश्चिमी सभ्यता के अंधानुगमन का यह दुष्प्रभाव पड़ा है।

इसके विरुद्ध जो हमारे भाई मंत्र-शास्त्र में पूर्ण विश्वास रखते थे और जिन्होंने इस शास्त्र की 'रुद्रयमल' और पतंजलि के 'योग-शास्त्र' आदि पुस्तकों का अध्ययन किया था वे अपने ज्ञान को आधुनिक वैद्यक शास्त्र (डाक्टरी) की भांति उपस्थित कर के दूसरों को नहीं सिखा सकते थे।

इसलिए, हमको उस समय तक जहाँ का तहाँ रहना पड़ा, जब तक हमारे 'जप' अर्थात् किसी विचार विशेष पर अविरल रूप से ध्यान करने के महत्व को कौइ नाम के विद्वान ने हमारे सन्मुख प्रकट न कर दिया, अथवा लैजर लजरिओ ने हमको हमारे 'बीज-मंत्रों' के आध्यात्मिक तथा चिकित्सात्मक महत्व को नहीं बतला दिया, अथवा हैडोक ने हमारे 'विचार-बल' की महिमा का वर्णन नहीं कर दिया अथवा जेम्स ने 'मनोविज्ञान' को संसार में उपस्थित नहीं कर दिया। यदि कोई मनुष्य इन विद्वानों की पुस्तकों को सरसरी तौर से भी पढ़े और इनके उपदेशों की अपने ऋषियों के उपदेशों से तुलना करे तो, उसको निस्संदेह हमारे पूर्वजों के गहन ज्ञान पर आश्चर्य होगा और वह मूक होकर उनके प्रति अपने मस्तक को सादर झुका देगा।

हमारे ऋषियों ने ऐसे यंत्रों के बिना ही, जो इस समय हमें विज्ञान द्वारा प्राप्त हैं, ऐसे ऐसे सत्यों का अनुसन्धान किया था,

जिनकी हमें आज मुक्तकण्ठ होकर प्रशंसा करनी पड़ती है। उनमें से कुछ उदाहरणार्थ, निम्नांकित हैं—

(१) ये बातें हमारे बहुत से पाठकों को केवल कपाल-कल्पित ज्ञात होगीं कि हमारे अथर्व वेद में, जो तीन हज़ार से अधिक वर्ष का पुराना बतलाया जाता है, पिशाब कराने की नली का बयान आता है और ऋग्वेद से यह पता चलता है कि उस समय के वैद्य लोग एक स्त्री के किसी धातु की टांग लगा कर, उसको चलने फिरने के योग्य कर सकते थे *।

(२) प्राचीन ऋषि उच्च कोटि के गणित से भी पूर्ण रूप से परिचित ज्ञात होते हैं। वे इस वाक्य का बहुत प्रयोग करते थे—'यदि पूर्ण में से पूर्ण को घटा दिया जावे, तो पूर्ण ही शेष रहेगा' †।

(३) पुराणों में एक कहानी है कि सोम ने दक्ष की २७ कन्याओं के साथ विवाह किया, जिनसे ये चार ग्रह उत्पन्न हुए—(१) मंगल (२) बुध (३) वृहस्पति और (४) शुक्र। इन

---

* (१) प्रति जंघां विश्पलाया अधत्तम्।

अर्थात् विश्पला के लिए एक टांग तैयार कर दी गई।

[ऋग्वेद, १। ११८। ८]

(२) चरित्रं हि वारि वाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम्।
सद्योजंघामायसीं विश्पलायै धनेहिते सर्तवे प्रत्यधत्तम्॥

[ऋग्वेद, १। ११६। १५]

अर्थात् जब खेल के युद्ध में विश्पला का पैर जंगली चिड़िया के पंख की भाँति अलग हो गया, तब तुमने उसको लोहे की टांग दे दी, जिससे वह युद्ध के समय तक घूम-फिर सके।

† पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।

विवाहों का यथार्थ अर्थ एक बैंटले नाम के यूरुपीय ज्योतिषी ने यह प्रकट किया है कि चन्द्रमा का इन बहुत से तारा-मण्डलों में से कुछ तारा-मण्डलों से सम्बन्ध है। बैंटले को इस गणित विद्या को इस विद्या से एक दूसरे यूरुपीय विद्वान हिंडमैन ने भी मान लिया है। अब इस पुराण की कथा के विषय में यह निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है कि यह कथा ज्योतिष-शास्त्र की एक घटना का उल्लेख करती है, जो ईसवी सन् के १४२४ तथा १४२३ वर्ष पूर्व, लगभग १६ महीने तक रही थी।

(४) इस बात की पुष्टि के लिए ग्रीक देश के इतिहासकार साक्षी हैं कि सिकन्दर राजा के समय में पंजाब प्रान्त में ऐसे हकीम और वैद्य विद्यमान थे, जो सांप के काटे का शर्तिया इलाज करते थे और उनको सिकंदर ने लाचार होकर, उस समय अपने यहाँ रक्खा, जब उसके हकीमों ने यह स्वीकार कर लिया कि हम इस इलाज को नहीं कर सकते।

(५) पश्चिमी भारत की संगीत-प्रिय-समिति (Philharmonic Society of Western India) के सदस्य श्री क्लेमेंट्स और राउ बहादुर देवल ने यह सिद्ध कर दिया है कि 'संगीत-रत्नाकर' के लेखक ने जिस प्रकार समान-प्रवाह [harmonic progression] के सिद्धान्त के सम्बन्ध में बतलाया है वही बात हैल्मोज नाम के एक पदार्थ-विज्ञान-वेत्ता के उन शब्दों में कही जा सकती है, जो उसने इस सम्बन्ध में प्रयोग किये हैं। और यह बात लोक-प्रसिद्ध है कि 'सगीत-रत्नाकर' के लेखक के पास स्वर का ज्ञान प्राप्त करने का कोई यंत्र नहीं था।

(६) आजकल विज्ञान में जो सर जगदीशचन्द्र बोस ने खोज की है, उससे यह सिद्ध हो गया है कि चन्द्रमा का वनिस्पति पर प्रभाव पड़ता है।

०

'फ़िज़ीकल कलचर' नाम की एक स्वास्थ्य सम्बन्धी अंग्रेज़ी मासिकपत्रिका के अप्रैल, सन् १९२७ ई० के अंक में डाक्टर बरनार मैकफ़ैडन लिखता है, "अभी थोड़े समय से विज्ञान-वेत्ता इस बात को जानने लगे हैं कि चन्द्रमा का प्रकाश वनस्पति के लिए बड़ा उत्तेजक होता है। इसलिए, किसानों का यह पुराना विश्वास, कि वे फ़सलें, जो ज़मीन के अन्दर होती हैं कृष्ण पक्ष में बोई जानी चाहिए और वे फ़सलें, जो इसके ऊपर होती हैं, शुक्ल पक्ष में, बर्ता ही जाता रहा, चाहे विज्ञानवेत्ता उनके इस विश्वास को आज तक गँवारों का अंध-विश्वास ही समझते रहे। इस सम्बन्ध में निम्नांकित श्री कृष्ण के वचन को स्मरण रखना चाहिए—

पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः।

[भगवद्गीता, १५ । १३]

अर्थात् मैं चन्द्रमा स्वरूप होकर जो वनस्पतियों का जीवन है सब औषधियों का पालन-पोषण करता हूं।

ये उदाहरण आजकल के एक विचारवान् अविश्वासी मनुष्य को निस्सन्देह रूप से यह विश्वास दिलाने के लिए काफ़ी होंगे कि हमारे देश, हिन्दुस्तान के प्राचीन ऋषियों तथा लेखकों के विचार बहुत गम्भीर, गहन तथा दूर-दृष्टि पूर्ण थे और हमको अपने प्राचीन वेद तथा पुराणों की पूर्णरूप से निन्दा करने के पूर्व कुछ विचार अवश्य कर लेना चाहिए।

इस सब लिखने से हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि हमारे पाठकों को सब बातों पर विश्वास ही कर लेना चाहिए। परन्तु यहां पर हमें सूर्य-नमस्कारों के सम्बन्ध में यह कहना है कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष, बीज-मंत्रों के साथ, इन नमस्कारों को करें और फिर देखें कि इनसे कुछ लाभ होता है या नहीं।

कुछ और आपत्तियों के उत्तर

बहुत से स्त्री-पुरुष प्रायः यह पूछा करते हैं कि क्या स्त्रियों, बच्चों, तथा वृद्ध लोगों के लिए भी शारीरिक व्यायाम करना उचित तथा आवश्यक है? क्या बीज-मंत्रों का भी कोई महत्व है! क्या सूर्य-नमस्कार में सूर्य पर एकाग्रचित्त होने की भी को: आवश्यकता है? इत्यादि इत्यादि। अब इन प्रश्नों का उत्त दिया जायगा।

स्त्रियां और व्यायाम

उन मनुष्यों के लिए, जिनका यह मत है कि स्त्रियों के व्यायाम की आवश्यकता नहीं है, हमें अपने देश के एक कवि क यह वचन उपस्थित करना है—

नारी निन्दा मत करो, नारी नर की खान।
जिस खान से पैदा हुए, ध्रुव प्रहलाद समान॥

[कबीर]

और यह कहना है कि एक दुर्बल और रोगिणी माता स्वस्थ बलवान तथा चिरायु होने वाले बच्चे उत्पन्न नहीं कर सकती। एक लड़की के जीवन की सब से बड़ी इच्छा यह होनी चाहिए कि मैं सुन्दर, सुदृढ़ तथा स्वस्थ बनूँ। स्त्री के लिए माता होना एक ईश्वरी अधिकार है। संसार में सदा बलवान और स्वस्थ माताएं ही उत्तम बच्चे उत्पन्न करती आई हैं।

डाक्टर जोनाज़ सिल्यूपाज का कथन है कि एक देश का शारीरिक बल साधारणतः वहाँ की महिलाओं के स्वास्थ्य प निर्भर है।

अब प्रश्न यह है कि क्या इस समय हमारे देश की लड़किय

और स्त्रियाँ शारीरिक पूर्णता के विचार से आदर्श हैं ? इस बात से कोई 'नहीं' न करेगा कि उनकी ऐसी अवस्था नहीं है।

क्या इस सम्बन्ध में यह बात सत्य नहीं है कि ये उन माता-पिताओं की सन्तान हैं, जो शायद ही कभी अपनी साधारण स्वस्थावस्था में रहे हैं।

क्या यह बात सत्य नहीं है कि आज कल जो लड़कियों के स्कूल हैं, वे केवल बाड़ों के समान हैं, जिनमें उनको दिन में तीन घंटे सुबह और तीन घंटे शाम को बैठना पड़ता है और जहाँ उनके लिए खेल-कूद का कुछ भी प्रबन्ध नहीं है, जिसकी इस वर्तमान समय में और भी अधिक आवश्यता है। क्योंकि इस समय जीवन की सब प्राचीन चाल-ढाल बदल गई है, लड़कियां घर के मिहनत के काम-काजों को, जैसे पीसना, पानी भरना, घर के कपड़े धोना आदि को नहीं करती हैं और न आजकल वे प्राचीन खेलों ही को, जैसे फुगदी, * और कोम्बदा † आदि को पसन्द करती हैं।

---

* इस खेल को दो दो लड़कियाँ मिल कर खेलती हैं। इसमें दो लड़कियां एक दूसरे के सामने खड़ी हो जाती हैं। दोनों में से हर एक लड़की अपनी अपनी बाँहों को एक दूसरे पर रख लेती है। इसके बाद एक दूसरे के हाथ में हाथ डाल कर दोनों गोलाकार चक्कर में घूमने लगती हैं। इस प्रकार दो दो मिल कर बहुत सी लड़कियाँ इस खेल को खेलती हैं। घूमते घूमते जब वे थक जाती हैं, तब एक दूसरे के हाथों को छोड़ कर अलग हो जाती हैं। कुछ देर सुस्ता कर वे फिर खेलने लगती हैं। बस, इसी प्रकार खेल होता रहता है और खूब थक जाने पर बन्द हो जाता है।

† इस खेल को दो या दो से अधिक लड़कियाँ खेलती हैं। इसमें ये अपने धड़ को दाएं बाएं झुकाती हुई चलती हैं। इसमें दो स्थान होते हैं एक

क्या यह बात सत्य नहीं है कि आजकल की लड़कियां अपने शरीर को भार्या तथा माता के कर्तव्यों को पालन करने के योग्य बनाने के पूर्व, असमय ही में, अपने मानसिक विचारों से युवावस्था का अनुभव करने लगती हैं ?

क्या यह बात सत्य नहीं है कि हमारी बहुत सी युवास्त्रियाँ तथा लड़कियां क्षयी रोग तथा अन्य भयंकर रोगों की शिकार बन जाती हैं ?

क्या यह बात सत्य नहीं है कि हमारी लड़कियाँ विवाह से घबड़ाती हैं ? क्योंकि वे यह डरती हैं कि लड़के-बच्चे होने पर हम अपने कर्तव्य का पालन न कर सकेंगी।

क्या यह बात सत्य नहीं है कि साधारणतः हमारी युवा स्त्रियां अपने मन में जनन क्रिया से बड़ी भयभीत रहती हैं ?

क्या यह बात सत्य नहीं है कि शहरों के रहने वालों के बच्चे अधिक संख्या में मरते हैं ?

क्या यह बात सत्य नहीं है कि आजकल बहुत कम युवा माताएं अपने बच्चों को स्वयं दूध पिलाने के लिए समर्थ हैं और बच्चों को अधिकतर कृत्रिम खाने के पदार्थ ही दिये जा रहे हैं ? उसका केवल कारण यह है कि स्त्रियाँ उस समय माता बन जाती हैं, जिस समय वे माता बनने के योग्य नहीं होती हैं।

क्या यह बात सत्य और हमारे लिए लज्जा की नहीं है कि जीवन का बीमा करने वाली कम्पनियां यूरुप और अमरीका

चलने का और दूसरा ठहरने का। इन दोनों स्थानों के बीच ये इसी प्रकार दाएं बाएं अपने धड़ को झुकाती हुई जाती-आती रहती हैं और जब ये थक जाती हैं, तब खेल बन्द हो जाता है।

में पुरुषों के साथ साथ स्त्रियों का भी बीमा करें और हमारे देश में ये कम्पनियाँ हमारी विवाहित स्त्रियों का बीमा किसी दशा में भी करने के लिए तैयार न हों ? *

इस अति शोचनीय अवस्था के सुधार का एक मात्र उपाय यह है कि हमको चाहिये, कि हम अपनी लड़कियों तथा स्त्रियों से सूर्य-नमस्कार जैसा किसी वैज्ञानिक व्यायाम पद्धति का अनुसरण कराएं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि लड़कियों तथा युवा स्त्रियों को इन नमस्कारों से लाभ होता है। ५२ वर्ष की अवस्था की स्त्रियों के विषय में यह देखा गया है कि उन्होंने इन नमस्कारों को थोड़े ही दिन करने के उपरांत अपनी युवावस्था को प्राप्त कर लिया है। जिन लोगों की आर्थिक स्थिति अच्छी है, उनको व्यायाम सम्बन्धी उन पत्र-पत्रिकाओं को भी पढ़ना चाहिये, जो कुछ थोड़े दिनों से हिन्दुस्तान, यूरुप और अमरीका से निकलने लगी हैं और उस साहित्य को भी पढ़ना चाहिये, जो एक नये शास्त्र, मनुष्य जाति की सभ्यता, के सम्बन्ध में निकला है। जो लोग इन सबको ध्यान-पूर्वक पढ़ेंगे, उनको यह विश्वास हो जायगा कि व्यायाम करने की जो विधि पुरुषों के लिए बतलाई गई है, वही कुछ आवश्यक परिवर्तन करके स्त्रियों के लिए भी उपयोगी है। इसलिए, स्त्रियों के शारीरिक व्यायाम करने के विरुद्ध जो आपत्ति उठाई जाती है, वह निराधार है।

---

* बीमा सम्बन्धी सन् १८८२ ई० के सरकारी एक्ट के अनुसार एक आदमी, जिसकी उम्र १४ और ६५ वर्ष के बीच में है पोस्टआफ़िस के सेविंग बैङ्क में ५ पौण्ड से लेकर १०० पौण्ड तक की किसी रक़म के लिए अलग बीमा करा सकता है और उन लड़के और लड़कियों का बीमा, जिनकी उम्र ८ और १४ वर्ष के बीच में है, केवल ५ पौण्ड का हो सकता है।

शक्ति परिमित है

हम में से बहुत से ऐसे हैं, जो व्यायाम करने से इस कारण भयभीत हैं कि कहीं उनका दिल कमज़ोर, उनको अजीर्ण और उनके शरीर में सिर्फ़ पुट्ठों ही का उभाड़ न हो जाय। अभी कुछ थोड़े समय से पत्र-पत्रिकाओं में इस विषय में आलोचनात्मक लेख निकलने लगे हैं कि पेशेवर पहलवान और खिलाड़ियों की हृदय के रोग तथा अजीर्ण आदि से अकाल-मृत्यु हो जाती है।

इस प्रकार के भयभीत लोगों के प्रति हमारा इस सम्बन्ध में यह उत्तर है कि ख़ैर, सूर्य-नमस्कार को तो जाने दीजिये ; ये रोग किसी भी व्यायाम-पद्धति के कारण नहीं होते हैं। हमारे देश के बहुत से पहलवानों का ख़्याल रहता है कि जो आदमी ५०० दंड करता है वह उससे, जो केवल ४०० दंड करता है, अधिक बलवान तथा स्वस्थ है, यद्यपि दूसरा आदमी पहिले से वास्तव में अधिक बलवान तथा स्वस्थ ही क्यों न होवे। इस ख़्याल में आकर हमारे पहलवान सदा अपनी शक्ति से अधिक व्यायाम करके अपने पुट्ठों के बल को बढ़ाने की कोशिश किया करते हैं। इसका फल यह होता है कि या तो वे हृदय के रोगों से पीड़ित होजाते हैं या उनके सिर्फ़ पुट्ठे ही उभड़ आते हैं, और अजीर्ण तो इस दशा में बहुत सों को हो जाता है। पहलवानों का एक और ख़्याल है कि हम जितना भोजन करेंगे, उतने ही अधिक बलवान होंगे। जब उनकी युवा अवस्था का समय होता है और व्यायाम ख़ूब किया जाता है, उस समय उनका यह ख़्याल कि 'अधिक भोजन से अधिक बल आता है' सत्य ज्ञात होता है। परन्तु जब उनकी उम्र ढलने लगती है और वह उनको फिर उतना व्यायाम नहीं करने देती, तब उनको यह समझ नहीं आती कि अब हमको भोजन

करना भी कम कर देना चाहिए। व्यायाम करने की हानियों के जो उदाहरण मिलते हैं, वे अधिक भोजन तथा बुरा भोजन करने के कारण अथवा आहार-विहार के नियमों के उल्लंघन करने से उत्पन्न होते हैं। जिन रोगों से पहलवान लोग तथा अन्य बहुत से साधारण लोग पीड़ित होते हैं, वे अधिक भोजन करने के कारण ही उत्पन्न होते हैं। व्यायाम का इससे तनिक भी सम्बन्ध नहीं है।

बरौदा की एक 'व्यायम' नाम की मासिकपत्रिका के मार्च सन् १९२५ ई० के अंक में कप्तान फनोन्द्र कृष्ण गुप्त की एक छोटी सी जीवनी प्रकाशित हुई थी। उसमें यह लिखा हुआ है कि कप्तान फनीन्द्र कृष्ण गुप्त ने अपने प्रतिद्वंदी पहलवानों को पराजित करने के लिए अधिक मात्रा में गरिष्ट भोजन का करना शुरू किया, जिसका यह फल हुआ कि उनको अजीर्ण हो गया। अब वे प्रति दिन २००० दंड और उतनी ही बैठकें करते हैं। परन्तु अब उनका भोजन बहुत सादा और मामूली है—वह एक साधारण आदमी की भांति दाल, चावल और थाड़ी सी मछली खाते हैं।

बस, इस प्रकार पहलवान दो तरह से अपने जीवन को नष्ट कर लेते हैं—एक तो अपनी शक्ति से अधिक तथा अति शीघ्रता-पूर्वक व्यायाम करने से और दूसरे अधिक भोजन करने से।

इसलिए, हमारे बुद्धिमान पूर्वजों ने सूर्य-नमस्कार व्यायाम में बीज तथा वेदिक मंत्र सम्मिलित कर दिये हैं। ये मंत्र रोगों को दूर करने तथा उनकी औषधि करने के अतिरिक्त शरीर में थकान नहीं आने देते। यदि २५ नमस्कारों की एक आवृति को बीज और वेद-मंत्रों के साथ नियमानुकूल किया जावे, तो सात अथवा आठ मिनट से कम समय नहीं लगेगा।

इसलिए, व्यायाम से भयभीत लोगों तथा पत्र-सम्पादकों को

सूर्य-नमस्कार करने का अवश्य साहस करना चाहिए। यदि वे सूर्य नमस्कार करेंगे, तो वे युवावस्था में महान शक्ति और वृद्धावस्था में प्रसन्नता प्राप्त करेंगे—और उनके, इन दोनों से अधिक महत्व-पूर्ण वस्तु, स्वस्थ बच्चे पैदा होंगे।

ज्ञान का प्रचार करना

कुछ हमारे धर्म-मार्तण्ड लोग, जो वेदिक धर्म के रक्षक बनते हैं उन लोगों पर अधर्म का दोष लगाते हैं, जो इन बीज तथा वेद मंत्रों को ब्राह्मणों से इतर जाति वालों को भी बतलाते हैं। इन लोगों से हमारा यह कहना है कि जब तुम्हारे ग्रन्थों का अध्ययन जर्मन, फ्रांस, इंगलैंड और अमरीका देशों के विद्वानों ने कर लिया, तब फिर इस ज्ञान से अपने ब्राह्मण अथवा अ-ब्राह्मणों को वंचित रखना कोई बुद्धिमानी की बात नहीं जान पड़ती। हमारे शास्त्रों में बड़े बड़े शक्तिशाली मंत्र दिये हुए हैं। परन्तु ये अपना फल उन्हीं को देते हैं, जिनमें कठिन-संयम-नियम पालन करने का साहस तथा अविरल उद्यम करने की शक्ति विद्यमान है। केवल अक्षर तथा शब्दों का ज्ञान प्राप्त कर लेना व्यर्थ है। क्योंकि यह सदा स्मरण रखना चाहिए कि 'जितना गुड़ डालोगे उतना ही मीठा होगा,' अर्थात् जो जितना परिश्रम करेगा, उसे उतना ही फल मिलेगा। इस सम्बन्ध में भगवान श्री कृष्ण का निम्नांकित वचन उल्लेखनीय है—

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'।

[भगवद्गीता, ४ । ११]

अर्थात् "मैं मनुष्यों की उसी प्रकार सेवा करता हूँ, जिस प्रकार वे मेरे पास आते हैं, अर्थात् मैं अपने भक्तों को उनके उपयुक्त फल देता हूं।" [के० टी० तिलैंग, एम० ए०]

प्राचीन समय के ब्राह्मणों पर, चाहे ठीक हो या ग़लत, यह दोष लगाया जाता है कि वे ब्राह्मण-जाति से इतर जातियों को विद्या से वंचित रखते थे। यहां पर हम इस दोष की मीमांसा करना आवश्यक नहीं समझते। परन्तु हमें अपने पाठकों से यह अवश्य कहना है कि हम को ब्राह्मण जाति से इतर जातियों के लोगों को भी सूर्य-नमस्कार करते हुए देखकर बड़ी प्रसन्नता होगी। ब्राह्मणों से हमारा यह कहना है कि जब लैज़र लैज़रिओ जैसे विदेशी विद्वानों ने बिलकुल अपनी निजी खोज से स्वर के अथवा बीज-मंत्रों के रहस्य का पता लगा लिया है, तब इस दशा में आप लोगों के लिए अपने लोगों से अपने ऋषियों के ज्ञान का छिपाना बुद्धिमानो का काम नहीं है।

अच्छी नींव डालना

हमें आजकल के समय में लड़के और लड़कियों के लिए शारीरिक व्यायाम की आवश्यकता के विषय में बतलाने की कोई आवश्यकता नहीं है। नष्ट हुए स्वास्थ्य को उस समय प्राप्त करने तथा ऐसी दशा में व्यायाम करके और भी अधिक दुर्भागी होने को अपेक्षा, जब समय नहीं रहा है, यह कहीं अच्छा है कि स्वस्थ शारीरिक जीवन की नींव जितनी जल्द हो सके, उतनी जल्द पड़ जावे और व्यायाम करने तथा स्वस्थ रहने की आदत हो जावे।

बुढ़ापे को न आने देना

वृद्ध मनुष्यों की दशा भिन्न ही है। एक राव बहादुर देवल जैसे वृद्ध मनुष्य हैं, जिनकी अवस्था इस समय लगभग ८० वर्ष को है। आपने अपनी इस वृद्धावस्था को सरल, उपयोगी तथा उद्यमी जीवन व्यतीत करके प्राप्त किया है। ऐसे वृद्धों के लिए

हमारा यह कहना है कि वे साधारण रूप से सूर्य-नमस्कार करें और इस अभिप्राय से करें कि हम दीर्घायु होकर अपने उन उद्देश्यों को प्राप्त करें, जिनको पूर्ण करने की हमको लगन लगी हुई है।

एक दूसरे प्रकार के वृद्ध मनुष्य वे हैं, जो अभाग्यवश घनी बस्तियों में रहने, रोगी रहने, अपने प्रियजनों के मरने तथा जीवन के अन्य सुख-दुख सहन करने के कारण वृद्धावस्था को प्राप्त होगये हैं। इन लोगों के लिए सूर्य-नमस्कार विशेष रूप से लाभदायक है। सूर्य-नमस्कार से इनके शरीर हो को लाभ नहीं पहुँचेगा, किन्तु इनकी आत्मा भी उन्नत होगी।

तीसरे वृद्ध मनुष्य वे हैं, जिन्होंने वृद्धावस्था के आने के पहिले ही अपने यौवन-काल में अनुचित अहार-विहार आदि के कारण अपने शरीर को पूर्ण रूप से नष्ट-भ्रष्ट कर लिया है और जिनकी दशा को वैद्य-डाक्टरों ने असाध्य कह दिया है। इन पुराने पापियों की भी दशा सुधर सकती है, यदि ये बच्चों की तरह सरल जीवन वितावें और विश्वास के साथ सूर्य-नमस्कारों को करें।

यहाँ पर इस सम्बन्ध में श्रीयुत वर्नार मैकफ़ैडन का निम्नांकित कथन उल्लेखनीय है—"उचित व्यायाम से वृद्धावस्था हटाई जा सकती है और वृद्धावस्था का आरम्भ होने पर व्यायाम के द्वारा कुछ अंगों में युवावस्था फिर प्राप्त हो सकती है। व्यायाम करने की विधि तथा मात्रा उसके करने वाले की शारीरिक अवस्था पर निर्भर है। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि जब तक व्यायाम को प्रति दिन नियम-पूर्वक न किया जायगा, तब तक शरीर में स्वच्छ रुधिर, अच्छा रुधिर-सचार, अच्छे मज्जा-तन्तु शरीर से बुरे पदार्थों का बहिष्कार, और अच्छी जीवन-शक्ति का प्रादुर्भाव नहीं हो सकेगा। प्रतिदिन का टहलना,

गहरा सांस लेना और मेरुदंड का सीधा रखना, ये तीन बातें वृद्धावस्था के समय विशेष रूप से लाभदायक हैं"। [फ़िज़िकल, कलचर, पृष्ठ २२६, नवम्बर, सन् १६२६ ई०]

सूर्य का महत्व

आज कल हमारे बहुत से भाई यह कहते हैं कि मंत्र-तंत्र सब ढकोसला है। थोड़े दिन हुए एक सज्जन ने हम से यह कहा था, "मेरा मंत्रों में बिलकुल विश्वास नहीं है; मैं सूर्य-नमस्कार करने में मंत्रों का उच्चारण नहीं करूंगा"। कुछ ऐसे भी लोग हैं, जिनका यह कहना है कि हम सूर्य की उपासन करना नहीं चाहते। इन लोगों से हमारा यह कहना है कि आप लोग लैज़र लैज़रिओ के पूर्वोक्त लेख तथा जर्मन देश के एक बड़े दृढ़ तथा स्वतंत्र विचारशील विज्ञान-वेत्ता श्रीयुत हैकल की 'विश्व पहेली' (The Riddle of the Universe) नाम की पुस्तक को पढ़ें। इस पुस्तक के १४ वें अध्याय में श्रीयुत हैकल एक स्थल पर यह लिखते हैं कि सूर्य, प्रकाश और उष्णता का अधिष्ठातृ देवता है, जिसका प्रभाव चैन्तय पदार्थों पर ज्ञात तथा अज्ञात रूप से पड़ता है। आजकल के विज्ञान-वेत्ता सूर्योपासना को और सब प्रकार के आस्तिकवादों से उत्तम समझते हैं। यह उस प्रकार का आस्तिकवाद है, जो वर्तमान समय के एक ईश्वरवाद में भी सरलता-पूर्वक परिणत हो सकता है। क्योंकि आधुनिक ग्रह-उपग्रह का पदार्थ-विज्ञान, और पृथ्वी की उत्पत्ति तथा निर्माण के सिद्धान्त हमको यह बतलाते हैं कि पृथ्वी, सूर्य का एक भाग है, जो उससे पृथक होगया है। अन्त में कभी न कभी पृथ्वी, सूर्य से जा मिलेगा.......... वास्तव में हमारा सम्पूर्ण शारीरिक तथा मानसिक जीवन, अन्त में और सब प्रकार के इंद्रियजन पदार्थों

के जीवन की भांति सूर्य के प्रकाश तथा उष्णता पर निर्भर है। इसलिए, बुद्धि यह बतलाती है कि सूर्योपासना का एक ईश्वरवाद, जिसमें प्रकृति प्रधान है, ईसाइयों तथा अन्य एक-ईश्वरवादियों के ईश्वरवाद से, जिसमें वे अपने ईश्वर को मनुष्य रूप मानते हैं, अधिक अच्छे सिद्धान्तों पर अवलम्बित ज्ञात होता है। और इसमें कोई संदेह नहीं है कि हजारों वर्ष पहिले सूर्योपासक लोग अन्य प्रकार के बहुत से एक-ईश्वरवादियों से मानसिक तथा आध्यात्मिक बातों में अधिक बढ़े-चढ़े थे। मैं जब सन् १८८१ ई० में बम्बई में था, तब मैंने बड़ो श्रद्धा-पूर्वक पारसी लोगों को समुद्र के किनारे खड़े होकर, अथवा अपने आसन पर झुक कर उदय होते तथा अस्त होते हुए सूर्य की पूजा करते देखा था।

यदि श्रीयुत हैकल ने हमारे लोगों को सूर्य-नमस्कार करते हुए देखा होता, तो उसको इस सम्बन्ध में और भी अधिक श्रद्धा उत्पन्न हो जाती।

निम्नांकित कुछ थोड़े से प्रमाणों से पाठकों को इस सम्बन्ध में विश्वास हो जायगा कि हमारी सूर्य-नमस्कार की क्रिया में सूर्य को विशेष रूप से क्यों पूजनीय माना गया है।

परन्तु इन प्रमाणों को उपस्थित करने के पूर्व हम अपने पाठकों को इस वचन के महत्व को कि "शारीरिक व्यायाम शरीर के रोगों के लिए औषधि स्वरूप होने की अपेक्षा उनके लिए अधिक बाधक है" समझाने का एक प्रयत्न और भी करते हैं। संसार में डाक्टरी विद्या तथा डाक्टर लोग सैकड़ों वर्षों से औषधियों तथा छुरा-चाकुओं के द्वारा रोगों की चिकित्सा करते चले आरहे हैं। परन्तु वे अभी पृथ्वी को रोग-रहित करने में समर्थ नहीं हुए हैं। प्रश्न यह है कि क्या कभी ऐसा हो सकता

है? हमारा उत्तर यह है कि हां, ऐसा अवश्य हो सकता है, यदि वैद्यक-शास्त्र, स्वास्थ्य-विद्याएं तथा राजा और प्रजा, ये सब अपनी अपनी शक्तियों को रोगों की उत्पत्ति के कारणों का पता लगाने और उनको नष्ट करने तथा इस बात में लगादें कि ये कारण फिर उत्पन्न न होने पावें।

क्योंकि रोगों को नष्ट करने के लिए जो आधुनिक विज्ञान द्वारा अनेक शक्तिशाली साधन, जैसे-औषधियां, सीरम और तरह तरह के औज़ार आदि—प्राप्त हुए हैं, वे रोगों के उत्पत्ति- कारण को दूर नहीं कर सकते हैं। इस सम्बन्ध में हम यहां दृढ़ता-पूर्वक फिर यह कहते हैं कि यदि सूर्य-नमस्कारों को विश्वास-पूर्वक नियमानुसार किया जावे, तो इनमें वह शक्ति है, जो रोगों का समूल अन्त कर देगी।

(१) 'फिज़ीकल कलचर' के जुलाई, सन् १९२६ ई० के अंक में एक गार्डनर रोनो नाम का विद्वान् लिखता है, "अपने शरीर को सूर्य से स्नान कराओ। सूर्य सर्वोपरि औषधि है। विज्ञान यह बतलाता है कि सूर्य ही से स्वास्थ मिलता है।"

"और आजकल संसार में क्षयी रोग, निमोनिया, छाजन, खांसी, जुक़ाम, और फेफड़ों के विकार आदि रोगों का इलाज चिकित्सा की एक नई विधि 'सूर्य चिकित्सा' से शीघ्रता तथा निश्चयता-पूर्वक हो रहा है।"

(२) डाक्टर हैस का, जो सूर्य-चिकित्सा में प्रमाण माना जाता है, कहना है कि सूर्य के प्रकाश ही से सब भोजन की सामिग्री उत्पन्न होती है, यह सब का उत्तेजक है और यही सब रोगों के लिए रामबाण औषधि है। यदि इस बात का समस्त मनुष्य-जाति में प्रचार हो जाय कि स्वास्थ्य के लिए सूर्य बड़े

महत्व की वस्तु है, तो मनुष्य–जाति अति अधिक उन्नत, स्वस्थ और सुखी हो जावे।

"सूर्य, वायु और पृथ्वी माता, त्रिमूर्ति हैं, जिनके द्वारा समस्त मनुष्य जाति को फिर से शक्ति तथा नवीनता प्राप्त हो सकती है। इन तीनों के अपने चिकित्सा सम्बन्धी गुण भिन्न भिन्न हैं, जिन पर मनुष्य-जीवन का शारीरिक, मानसिक, तथा आध्यात्मिक सुख निर्भर है," ऐसा विज्ञान शास्त्र कहता है।

(३) डाक्टर रोलियर, जिसने स्विटज़रलैंड देश में 'सूर्य-पाठशाला' खोली है, सूर्य–चिकित्सा का प्रवर्तक है। यह सब से पहिला विद्वान है, जिसने यह मालूम किया है कि सूर्य का प्रकाश जिस प्रकार पौदे के बढ़ने के लिए आवश्यक है. उसी प्रकार मनुष्य के बच्चे के बढ़ने तथा अन्य सब पदार्थों के लिए भी आवश्यक है। परन्तु इस सम्बन्ध में आवश्यक यह है कि जिस प्रकार पौदे के अंग पर सूर्य का सीधा प्रकाश पड़ता है, उसी प्रकार बच्चे के खुले अंग पर भी पड़ना चाहिए।

डाक्टर रोलियर का कथन है, "सूर्य-स्नान का महत्व स्कूल के प्रोग्राम में उसी प्रकार होना चाहिए, जिस प्रकार खेल–कूद। ये दोनों (सूर्य-स्नान और खेल–कूद) प्रायः एक साथ भी हो सकते हैं। मन–बहलाव तथा शारीरिक व्यायाम को ऐसे समय पर करना चाहिए, जिससे प्रातःकाल के उदय होते हुए सूर्य के प्रकाश से लाभ उठाया जा सके और बच्चों को उस समय नंगा कर देना चाहिए।" ['फ़िज़िकल कलचर,' अगस्त, सन् १९२६ ई०]

(४) ब्रिटेन देश के विश्वकोष के १२वें संस्करण में श्रीयुत लिओनार्ड विलियम्स, एम० डी०, का अपने विटैमीन सम्बन्धी लेख में यह कहना है, "विटैमीन बिना आग के पके हुए सब फलों और साग-भाजियों में होती है और इस लोकोक्ति से,

कि जिन खाद्य पदार्थों को सूर्य चूम लेता है अर्थात् जिन पर सूर्य का प्रकाश पड़ता है, वे, उनकी अपेक्षा, जो सूर्य के चुम्बन से वंचित रहते हैं, अधिक गुणकारी होते हैं, यह सत्य प्रमाणित होता है कि जो साग-भाजियाँ भूमि के ऊपर होती हैं, उनमें, उन साग-भाजियों की अपेक्षा, जो उसके भीतर होती हैं विटैमीन की मात्रा अधिक होती है।

सूर्य्य की स्तुति में श्रीमती हेमन्स की निम्नांकित पंक्तियां भी यहां उल्लेखनीय हैं—

(५) "तू केवल राजाओं के राज-भवनों ही में नहीं जाता है, किन्तु तू सब प्राणियों को सुख और सम्पत्ति है। तू जल-थल दोनों ही जगहों की आशा है। हे सूर्य की किरण, संसार में तेरे समान तो बस तू ही है।"

(६) "उन गायों के दूध में, जो सदा घरों के भीतर पाली तथा रक्खी जाती हैं, विटैमीन नम्बर (द), जो बच्चों की वृद्धि, स्वास्थ्य तथा उनको रिकैट* से बचाने के लिए अति आवश्यक है, काफी मात्रा में नहीं होती।" इस विटैमीन के पैदा करने के लिए गाय को धूप में रहने की आवश्यकता है। [साईंटिफ़िक अमरीकन, अप्रैल, सन् १९२७ ई०]

(७) डाक्टर एस०. एम० बैलफ़्रेज, एम० डी०, अपनी 'सर्वोत्तम खाद्य पदार्थ क्या है' नाम की पुस्तक में, २६ वें पृष्ठ में लिखता है, "यह विद्युत शक्ति, जो सम्पूर्ण विश्व में व्यापक है, हमें इस पृथ्वी पर सूर्य से प्रकाश तथा उष्णता के रूप में

* रिकैट एक प्रकार की बच्चों की बीमारी है, जिसमें बच्चों की हड्डियां नरम हो जाती हैं और मुड़ जाती हैं।

प्राप्त होती है। यह इसी विद्युत्-शक्ति का प्रभाव है कि यहाँ के जड़ पदार्थ भी चैतन्य हो जाते हैं।

"पौदा सूर्य के प्रकाश के प्रभाव तथा उसकी जादूभरी शक्ति के गुण के कारण आक्सिजन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, लोहा और फ़ासफ़ोरस आदि निर्जीव पदार्थों को एक जगह मिला देता है, इस मेल से उत्तम उत्तम पदार्थ उत्पन्न होते हैं।

"इस प्रकार हमें यह ज्ञात होता है कि पौदों में विद्युत् शक्ति बहुत बड़ी मात्रा में एकत्रित रहती है। इनसे अन्य प्राणी शक्ति ग्रहण करते हैं। इसलिए, उस शक्ति का आदि कारण सूर्य ही है, जिसको हम अपने जीवन में प्रति क्षण व्यय करते रहते हैं।

(८) श्रीयुत चार्ल्स एफ़ हानेल नाम के एक यूरुपीय विद्वान का यह कहना है, "इस पृथ्वी की सम्पूर्ण शक्ति जो इसके कुछ जड़-चेतन, दोनों भागों में व्यापक है, सीधे अथवा फेर से सूर्य ही से आती है। बहता हुआ जल, उड़ाने वाली वायु, चलते हुए बादल, लुढ़कती हुई गर्जन, कौंदती हुई बिजली, वर्षा, हिम, कुहरा, ओला, पौदों का बढ़ना, पशु, पक्षी, तथा मनुष्य-शरीरों की गर्मी तथा इनका हिलना और लकड़ी तथा कोयला आदि का जलना, ये सब उसी सूर्य की शक्ति के भिन्न भिन्न स्वरूप हैं।"

(९) सूर्य आत्मा जगतः तस्थुषश्च। [ऋग्वेद १। ११५। १]
अर्थात् "सूर्य, संसार के सब जड़-जंगम पदार्थों की आत्मा है।"

सस्तापन

कुछ मनुष्य, जो सूर्य-नमस्कार को अच्छा नहीं समझते हैं, कहते हैं कि यह व्यायाम इसलिए अधिक माना जा रहा है कि

यह बहुत सस्ता है। परन्तु प्रश्न यह है कि सस्तापन गुण है अथवा दोष ? क्या यह अपने सस्तेपन ही के कारण सब के करने योग्य नहीं है ?

सूर्य-नमस्कार में कुछ भी ख़र्च नहीं पड़ता। परन्तु यह याद रहे कि सस्तापन इसका मुख्य गुण नहीं है। यह तो इसके उन अनेक गुणों में एक गुण है, जिसके कारण सूर्य-नमस्कार अन्य व्यायामों से बढ़ जाता है।

सूर्य-नमस्कार से केवल पुट्ठों ही का विकास नहीं होता है, किन्तु सम्पूर्ण ज्ञान-तन्तुओं का भी विकास होता है और इसके द्वारा सब महत्व-पूर्ण ग्रंथियाँ तथा अन्य आंतरिक प्रधान अंग अपना अपना काम स्वाभाविक रूप से करने लगते हैं।

अब तक नली-होन ग्रंथि के काम और उसकी रतूबत के निकलने के विषय में तथा इस विषय में कि इसका मनुष्य के शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है बहुत कम ज्ञान था। परन्तु अब विज्ञान ने हमें यह बतला दिया है कि वे शक्तियाँ, जिनके द्वारा हमारा शारीरिक तथा मानसिक जीवन प्रभावित होता है और जो शरीर के विकास को बढ़ाती अथवा मुख की सुन्दरता तथा शरीर की बनावट को बनाती अथवा बिगाड़ती हैं, शरीर की ग्रंथियों से उत्पन्न होती हैं।

सूर्य-नमस्कार करने से ये ग्रंथियाँ तथा अन्य आन्तरिक अंग विकसित तथा सुदृढ़ होते हैं।

इसलिए, यह स्मरण रखना चाहिए कि इसका प्रधान गुण केवल सस्तापन ही नहीं है, जिसके ऊपर सूर्य-नमस्कार का इतना भारी महत्व निर्भर है।

एकसापन

एक और आपत्ति, जो सूर्य-नमस्कार के विरुद्ध उठाई जाती है, वह यह है कि यह व्यायाम तो एकसा* और अरुचिकर है।

यह मानी हुई बात है कि जिस काम के करने में कठिनाई और थकान होती है उस काम में एकसापन का दोष होता है। सूर्य-नमस्कार को हमारे नियम के अनुसार करने में केवल १५ से ३० मिनट तक लगते हैं और इसमें अनेक प्रकार से शरीर को हिलना-जुलना पड़ता है, जिससे इसके अंग प्रत्यंग पर ज़ोर पड़ता है। इसलिए, इस पर एकसापन का दोष किसी भांति नहीं आ सकता।

इसके अतिरिक्त, जब हम इस व्यायाम की सूरतों को करते हैं, तब हम को इनके प्रत्येक हिलाव-जुलाव में अपना मन लगाना पड़ता है, जिसके कारण जब तक हम नमस्कार करते रहते हैं, तब तक हमें बड़े आनन्द का अनुभव होता रहता है।

प्रत्येक व्यायाम में मनोबल तथा विचार-बल का महत्व बहुत है और विशेष रूप से सूर्य नमस्कार में।

'फ़िज़ीकल कलचर' के अक्टूबर, सन् १९२७ ई० के अंक में श्रीयुत बरनार मैकफ़ैड़न ने लिखा है, "विलियम मलडून नाम के एक पहलवान का, जो बहुत बुड्ढा होकर मरा है, यह अनेक बार का अनुभव है कि बल का विकास एक प्रकार के मनोभाव पर निर्भर है। वह मनोभाव एक प्रकार का बल है, जिसके बिना शारीरिक बल की प्राप्ति नहीं हो सकती।

"इस बचन का विरोध नहीं किया जा सकता।

---

* जिस काम के करने में परिवर्तन का अभाव हो अर्थात जिसमें आदि से अन्त तक एक ही सी क्रिया करनी पड़े, उस काम को एकसा कहते हैं। उदाहरणार्थ—डाक घर में चिट्ठियों पर मुहर लगाना अथवा छापेख़ाने में मशीन पर से छपा हुआ काग़ज़ हटाना, इत्यादि।

" कोई भी बुद्धिमान मनुष्य मनोबल के महत्व को कम नहीं बताएगा। यह वह चिनगारी है, जो गुणी पुरुषों की ज्वाला को धधकाती है, अर्थात उनके उत्साह को बढ़ाती है। यह हमारे उत्साह तथा उच्च होने की अभिलाषा का उद्भव स्थान तथा मूल-कारण है। यह हमको जीवन के उच्च पदों की प्राप्ति के लिए ओजस्विनी दृढ़ता प्रदान करती है।

" मन तथा शरीर को इनकी सीमा तक विकसित करना चाहिए, जिससे इनकी आन्तरिक शक्तियां प्रकट होवें।

" मन और शरीर को हद दर्जे तक विकसित करना, यह प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है और जब ये विकास को प्राप्त हो जायँ, तब इनको इस अवस्था में स्थिर रखना चाहिए।

' इस प्रकार की नीति का पालन करने से युवावस्था का उत्साह जीवन-पर्यन्त रह सकता है। और जब युवावस्था का प्रचंड उत्साह मध्यावस्था के अनन्तर जीवन की अभिलाषाओं के कारण स्थिर कर लिया जाता है, तब हम उस सम्पत्ति को प्राप्त कर लेते हैं, जिसका अनुमान नहीं किया जा सकता।

" परन्तु इस प्रकार की शक्तियों के प्राप्त तथा संचित करने के लिए हमको उस मनोबल की आवश्यकता है, जिसके साथ वह दृढ़ता होवे, जो हमको जीवन के नियमों पर चलने को लाचार करने के लिए आवश्यक होती है।

मनोबल के विषय पर श्रीयुत एफ० सी० हैडक, एम० सी० सी० एम० डी० के विचार और भी अधिक प्रकाश डालेंगे। इस सम्बन्ध में आप अपनी पुस्तक 'मनोबल' (Power of Will) में अपने निम्नांकित विचार प्रकट करते हैं—

" मनोबल की अवस्था शारीरिक स्वास्थ्य की दशा पर निर्भर है।"

" शारीरिक स्वास्थ्य की प्राप्ति विज्ञान का एक उद्देश्य है, जो प्रौढ़ तथा दृढ़ मनोबल से सिद्ध हो सकता है। "

" स्वास्थ्य के प्रत्येक नियम के ध्यान-पूर्वक पालन किये जाने से मनोबल विकसित होता है। "

पाठक लोग इस बात पर अवश्य ध्यान देंगे कि सूर्य-नमस्कार में हर समय मनोबल से काम करने तथा साथ साथ स्वास्थ्य-सामर्थ्य तथा दीर्घायु प्राप्ति के लिए चिन्तन करने से अवश्य मनोवाञ्छित फल प्राप्त होता है। इसीलिए, मन को सूर्य-नमस्कार के आठ अंगों* [चौथा प्रकरण देखो] में रक्खा गया है। मन वास्तव में वह शक्ति है, जिससे बल, स्वास्थ्य तथा प्रसन्नता उत्पन्न होती है। वर्षों तक नीरोग रह कर जुक़ाम-खांसी से भी पीड़ित न होकर स्वस्थ जीवन व्यतीत करना एक बड़े आनन्द की बात है। और जब यह अवस्था सूर्य-नमस्कारों को नित्य प्रति नियमानुकूल करने से प्राप्त हो जाती है, तब फिर क्या हम इन नमस्कारों पर एकसापन तथा अरुचि होने के दोष को आरोपित कर सकते हैं ?

धार्मिक रंग

कुछ नास्तिक और अ-हिन्दू लोग इस विचार से सूर्य-नमस्कार को ग्रहण नहीं करते कि यह हिन्दुओं का एक धार्मिक कृत्य है।

---

* उरसा शिरसा दृष्ट्या वचसा मनसा तथा।
पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोऽष्टांग ईरितः ॥

अर्थात् प्रत्येक नमस्कार में शरीर के ये आठ अंग प्रयोग में आते हैं—(१) माथा, (२) सीना, (३) टांग और पैर, (४) बांह और हाथ, (५) घुटने, (६) दृष्टि, (७) कान और (८) मन और विचार।

यह बात सत्य है कि सूर्य-नमस्कार अवश्य हिन्दुओं का एक धार्मिक कार्य है। परन्तु वास्तव में देखा जाय तो यह कोई धार्मिक कृत्य नहीं है। हिन्दुओं में स्नान करना भी एक धार्मिक कृत्य माना जाता है। क्योंकि स्नान से स्वच्छता, स्वास्थ्य तथा शक्ति प्राप्त होती है। तो फिर क्या कभी नास्तिक और अ-हिन्दुओं ने स्नान के प्रति भी आपत्ति उठाई है? हमको इसलिए, विवेक-पूर्वक उन कृत्यों में, जो वास्तव में धार्मिक हैं और उनमें, जो लाभकारी होने के कारण दैनिक धार्मिक कार्यों में सम्मिलित कर लिये गये हैं और जो देखने में धार्मिक ज्ञात होते हैं, स्पष्ट रूप से पहचान कर लेनी चाहिए। स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों का किसी धार्मिक सिद्धान्त से भला क्या प्रयोजन?

यदि जो इतने पर भी सूर्य-नमस्कार करने में बीज तथा वेद-मंत्रों के उच्चारण के प्रति श्रद्धा न रक्खें, तो वे इन मंत्रों को निकाल कर शेष व्यायाम को अवश्य पूर्ण रूप से करें। हमें आशा है कि इन मत्रों के निकालने पर भी हमारी सूर्य-नमस्कार अ-हिन्दू लोगों के स्वास्थ्य, सामर्थ्य तथा दीर्घायु की प्राप्ति के मार्ग को सुगम बना देगी।

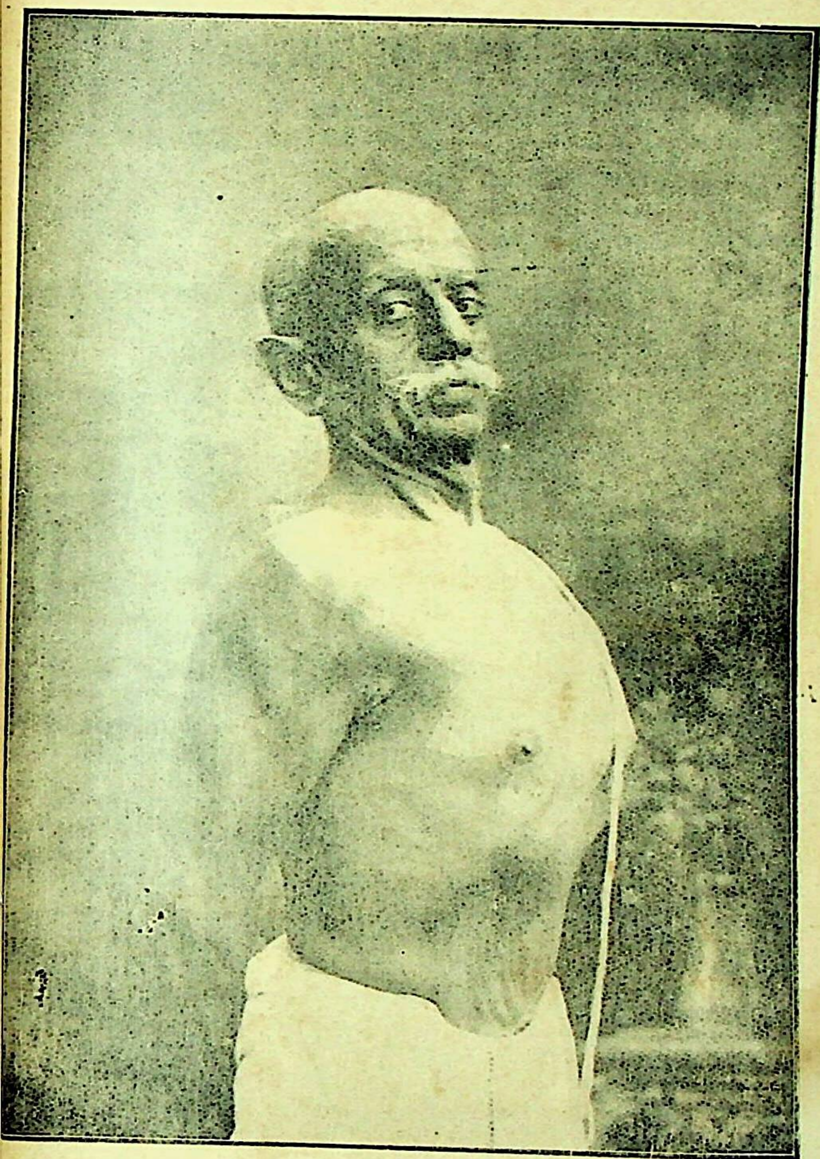
इस सम्बन्ध में किसी का मत-भेद नहीं है कि आजकल के कठिन जीवन-संग्राम में जीवन-यात्रा के आरम्भ करने के लिए प्रबल पाचण-शक्ति का होना सर्वोत्तम सामिग्री है और यह शक्ति केवल तभी सुरक्षित रक्खी जा सकती है, जब सूर्य-नमस्कार जैसे किसी व्यायाम को धार्मिक कृत्य समझ कर अथवा दृढ़ता-पूर्वक किया जावेगा।

इस प्रकार सूर्य-नमस्कार करने से स्वास्थ्य, सामर्थ्य तथा दीर्घायु की प्राप्ति होती है।

दसवाँ प्रकरण

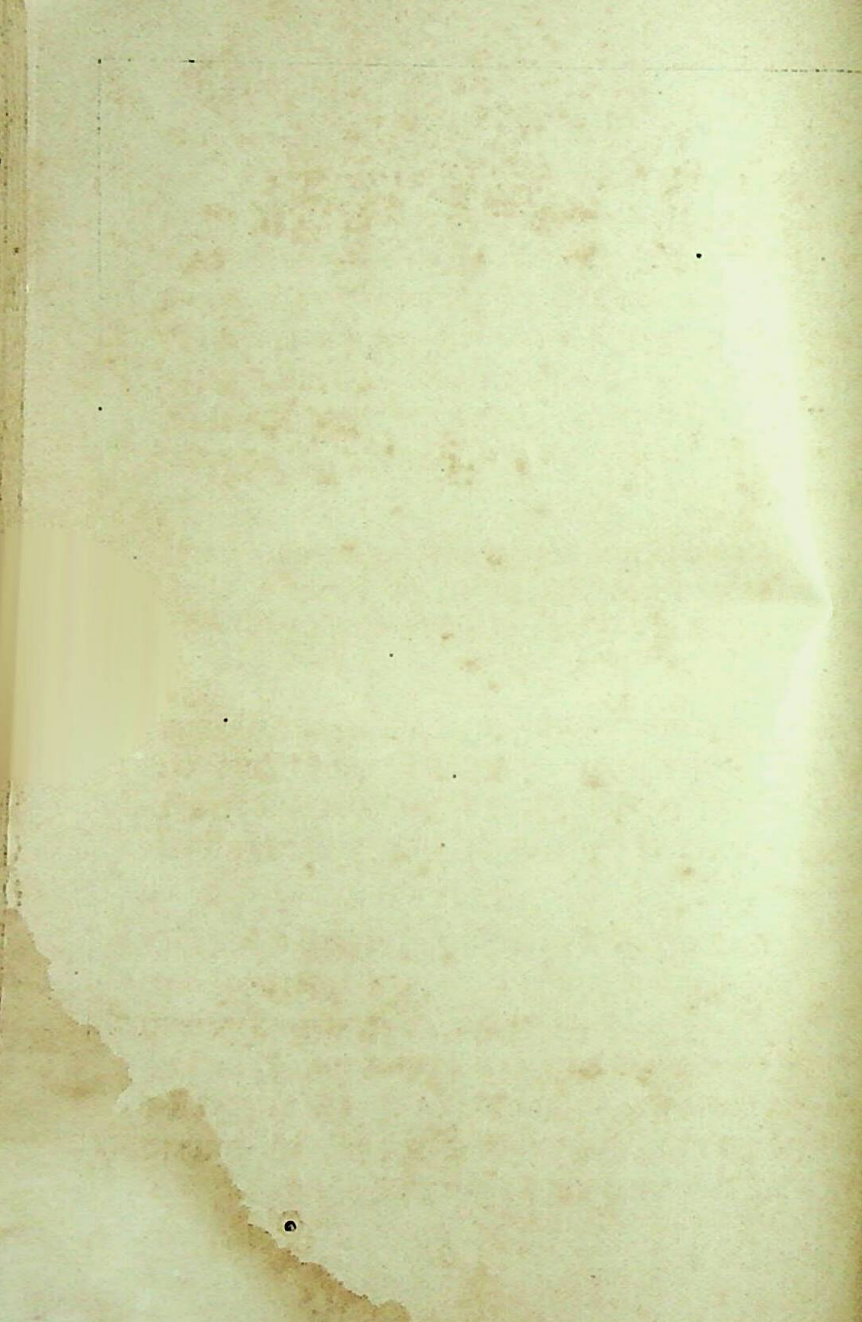
हमारा अनुभव

जब हम युवा थे, तब हमने पंजाब के एक सुप्रसिद्ध पेशेवर पहलवान, इमामुद्दीन से कुश्ती करना सीखा था। हम कुश्ती के साथ साथ दंड-बैठक भी किया करते थे और मुगदर भी हिलाया करते थे। परन्तु हम अपने पहलवानों की भांति खूब गरिष्ट भोजन करने लगे और शरीर से खूब मोटे हो गये। सन् १८९७ ई० में हमने सुविख्यात व्यायाम-विशारद, सेंडो के बारे में पढ़ा और उसके व्यायाम सम्बन्धी सब सामान तथा पुस्तकों को खरीदा और हम नित्य प्रति लगातार पूरे दस वर्ष तक उनके अनुसार व्यायाम करते रहे, जिसका यह फल हुआ कि हमारा सीना जैसा पहिले था, वैसा ही रहा और हमारी कमर और पेडू बहुत घट गये। अब हम अपने सम्मानित मित्र मिरज के चीफ़, श्रीमंत सर गंगाधर राव, उपनाम श्री बाला साहब के उदाहरण तथा कहने से सन् १९०८ ई० से सूर्य-नमस्कारों को बीज तथा और वेद-मंत्रों के साथ प्रतिदिन नियमानुकूल करते आ रहे हैं, जिसका फल यह हुआ है कि हमारा शरीर और दिमाग़ बहुत हलका हो गया है और हमको युवावस्था का सा अनुभव होने लगा है। परन्तु सब से बड़ा लाभ इन नमस्कारों से हमें यह हुआ है कि हम गत १७ वर्ष से ज्वरादि रोगों का तो नाम ही क्या, ज़ुकाम और खांसी से भी पीड़ित नहीं हुए हैं। हममें अच्छा सामर्थ्य है, जिसका अति आश्चर्य-जनक प्रमाण यह



आँध-राज्य के चीफ़, श्रीयुत बालासाहब पंत, प्रतिनिधि, ६० वर्ष की अवस्था में

७८ पृष्ठ के सामने



है कि यद्यपि हमारे प्लेग का चार बार टीका लग चुका है, परन्तु हमें न तो कभी ज्वर आया और न हमें कभी ऐसी पीड़ा अनुभव हुई, जिसके कारण हमने अपने दैनिक सूर्य-नमस्कार के व्यायाम को छोड़ दिया हो। हमें इन गत १७ वर्ष के अनुभव तथा अध्ययन ने यह कहने के लिए अधिकारी बना दिया है कि सूर्य नमस्कार अन्य सब व्यायाम शैलियों में इस बात में बढ़ कर है कि यह शारीरिक पुरुषार्थ, मानसिक बल तथा सहिष्णुता को, जो कठिन से कठिन परिस्थिति में भी विचलित नहीं हो सकती है, बढ़ाता है।

यहाँ पर जर्मन देश के वहिष्कृत क़ैसर का यह कथन, जिसको हम 'फ़िज़िकल कलचर' नाम की मासिक-पत्रिका के फ़र्वरी, सन् १९२१ ई० के अङ्क से उद्धृत करते हैं, उल्लेखनीय है—

"इसका कारण कि मैं सन् १९१४ ई० के यूरुपीय महायुद्ध के इतने भयंकर आन्दोलन तथा उत्तरदायित्व के भार के सन्मुख भी अपनी शारीरिक तथा मानसिक सहिष्णुता को स्थिर रख सका, मेरा बहुत दूर का टहलना, वृक्षों को गिराना और लकड़ी चीरना तथा घोड़े की सवारी, आदि अनेक प्रकार के शारीरिक व्यायाम थे।"

जो लोग हमारी भाँति इन नमस्कारों में धार्मिक तत्व देखेंगे, उनको और भी अधिक लाभ होगा। अब सूर्य-भगवान की कृपा से, जिसके लिए मित्र (सब का मित्र), तथा सविता (सब का उत्पादक) जैसे उपयुक्त शब्दों का प्रयोग किया गया है, 'ओं ह्रां ह्रीं,' आदि बीज-मन्त्रों का रहस्य स्पष्ट रूप से हल हो गया है। अब हम पूर्ण दृढ़ता-पूर्वक यह कह सकते हैं कि सूर्य-नमस्कार सब प्रकार की व्यायाम-पद्धतियों से उत्तम है।

हमारा उपरोक्त कथन कि हम को गत १७ वर्ष से कोई किसी प्रकार का रोग नहीं हुआ है पाठकों को अवश्य यह जानने के लिए कि हम क्या खाते-पीते हैं तथा कितना काम करते हैं—संक्षेप में, हम दिन-रात के २४ घंटों को किस प्रकार व्यतीत करते हैं—उत्सुक बना देगा। इसलिए, हम यहाँ अपनी पूर्ण दिन-चर्य्या का लिखना उचित समझते हैं।

हमारी दिनचर्य्या

[नोट—यह दिन-चर्य्या प्रातःकाल के ३·३० बजे से आरम्भ होती है]

३-३० बजे से ४ बजे तक—सोकर उठना, प्रातःकाल की शौचादि (स्नान भी) नित्य क्रिया से निवृत्त होना।

४ बजे से ५ बजे तक—सूर्य-नमस्कार करना।

५ बजे से ५-३० बजे तक—प्रातःकाल का पूजा-पाठ।

५-३० बजे से ६-१५ बजे तक—टहलना, और ६०० फुट ऊंची पहाड़ी पर तेज़ी के साथ चढ़ना और उतरना।

६-१५ बजे से ७ बजे तक—कलेवा करना और रानी साहिबा तथा बच्चों को अंग्रेजी पढ़ाना।

७ बजे से ९-३० बजे तक डाक की चिट्ठी-पत्री देखना और समाचार, आदि पढ़ना।

९-३० बजे से १०-३० बजे तक—चित्रकारी करना।

१०-३० बजे से ११-३० बजे तक—दोपहर का भोजन।

११-३० से १२-३० तक—पढ़ना।

१२-३० से १-३० तक—आराम करना।

१—३० से ३ तक—साहित्यिक कार्य, लिखना-पढ़ना, आदि।

३ से ४–३० तक—दफ़्तर का काम, मंत्रियों के काम को देखना, आये हुए प्रार्थना पत्रों पर यथोचित कार्यवाही करना, अपील सुनना तथा हाईकोर्ट के अन्य कामों को करना [रविवार, मंगलवार तथा अन्य छुट्टियों के दिनों दफ़्तर का काम बंद रहता है।]

४–३० से ५ तक—संग-तराशी, फोटोग्राफ़ी तथा अन्य कला-कौशल के कामों की देख-भाल करना।

५ से ६ तक—कीर्तन।

६ से ६–३० तक—संध्या-काल का पूजा-पाठ।

६–३० से ७–३० तक—रात्रि-समय का भोजन।

७–३० से ८–३० तक—मराठी और संस्कृत पढ़ना तथा रानी साहिबा और बच्चों को इन भाषाओं को पढ़ाना।

८–३० से ३–३० तक—सोना, बस तकिये पर पांच मिनट सिर रखने पर ही ख़ूब गहरी नींद आजाती है।

यदि किसी को स्वास्थ्य, शक्ति, चैतन्यता, नीरोगिता तथा दीर्घायु को प्राप्त करना है, तो दैनिक व्यायाम के साथ सादा सात्विक भोजन करना चाहिए।

हमारा कलेवा यह है कि गाय के थनों से निकले हुए गरम दूध के, जिसे अग्नि पर गरम नहीं किया जाता, दो कटोरे पीते हैं, और कुछ थोड़ा सा शहद मिला कर मक्खन भी खाते हैं।

दोपहर का भोजन

हमारे दोपहर के भोजन की मात्रा यह है—चार छटांक चावल का भात, एक अथवा आधी गेहूं की रोटी (एक रोटी दो छटांक की), थोड़ी सी दाल, कढ़ी और दो-तीन प्रकार की बिना

पकी हुई, और पकी हुई (बिना मसाले की) साग-भाजियां, कुछ थोड़ा सा दूध अथवा दूध की बनी हुई कोई चीज़, जैसे दही, मक्खन, घी आदि, और फल, यदि हुए तो।

रात्रि का भोजन

हमारे रात्रि के भोजन में भी वे ही सब पदार्थ होते हैं, जो हमारे उपरोक्त दोपहर के भोजन में। अंतर केवल इतना होता है कि हम रात्रि के समय दोपहर की अपेक्षा बहुत कम भोजन करते हैं।

फल

जब हमें फल और मेवा मिल जाते हैं, तब हम भोजन के साथ इनको भी खाते हैं। जिन फल और मेवाओं को हम खाते हैं, वे ये हैं—आम, आमरूद, अनार, अंगूर, अंजीर, सेव, नारंगी, बादाम और गोला इत्यादि।

जब हम फल और मेवा को भोजन के साथ खाते हैं, तब चावल का भात, रोटी और दाल उतनी ही मात्रा में कम हो जाते हैं।

भुने हुये पदार्थ

घी और तेल के भुने अथवा पके हुए पदार्थ हमारे भोजन में कभी नहीं आने पाते। इनको हमने हानिकारक समझ कर छोड़ दिया है

पीने का जल

हम ताज़ा ठंडा चश्मे का जल पीते हैं और उसमें कुछ थोड़ी सी गुलाब अथवा चमेली आदि की सुगंधि मिला लेते हैं। हम भोजन करने में जल नहीं पीते। परन्तु भोजन करने के एक घंटे

के उपरांत जल पीते हैं और यदि हमें इसके पश्चात् भी जल की इच्छा होवे, तो हम उसको एक वार और पी लेते हैं।

मादक पदार्थ

हम सब प्रकार के मादक पदार्थों को जैसे—चाय, क़हवा, कोका तथा तम्बाकू आदि को धार्मिक दृष्टि से वर्जित समझते हैं। हम पान-सुपारी तक नहीं खाते हैं।

सुप्रसिद्ध विद्वान श्री० वरनार मैकफैडन ने भोजन की मात्रा के सम्बन्ध में यह विचार प्रकट किया है—"इस बात की यथार्थता पर ध्यान देना चाहिए कि कम भोजन करने से स्वास्थ्य तथा शक्ति प्राप्त होते और संचित रहते हैं। यदि जितना भोजन साधारणतः किया जाता है, उसका आधा किया जावे, तो वही एक व्यक्ति के लिए काफ़ी होगा।"

मराठी भाषा में निम्नांकित एक कहावत है, जो उपरोक्त श्री० वरनार के भाव को पूर्ण रूप से प्रकट करती है—

'फार खाल तर थोड़ें खाल। थोड़ें खाल तर फार खाल। अर्थात्—भोजन कम करो। परन्तु अधिक भोजन करने के लिए जीवित रहो।

प्रतिदिन सूर्य-नमस्कार जैसी कोई व्यायाम-पद्धति के पालन करने, भूख होने पर सादा, सात्विक एवं लाभकारी भोजन करने तथा उसको ख़ूब चबाकर खाने के अतिरिक्त, जब तब पूर्ण अथवा अर्द्ध उपवास भी करना आवश्यक है।

उपवास

हम प्रत्येक सोमवार, मंगल, प्रत्येक मास की कृष्णपक्ष की चतुर्थी और वर्ष के प्रत्येक प्रधान दिन को अर्द्ध उपवास

करते हैं। आश्विन (कार) मास की नवरात्रि के दिनों में हम फल खाकर और गाय का, वही थनों से निकला हुआ, ताज़ा गरम बिना मीठे के दूध को पीकर रहते हैं। चतुर्मास* के एक अथवा दो मासों में हम हविष्य (बिना नमक का भोजन) भोजन करते हैं।

श्रीयुत बरनार मैकफ़ैडन का कहना है, "यदि तुम अनियत समय तक अच्छी तरह से जीवित रहना चाहते हो, तो तुमको यह संकल्प करना होगा कि तब तक हम उपवास अवश्य करेंगे।

यदि तुमने अभी तक सूर्य-नमस्कार की इस प्रकार से भोजन तथा उपवास करके, जैसे इस प्रकरण में तथा आगे १२ वें प्रकरण में दिया हुआ है, जांच तथा अभ्यास नहीं किया है, तो हमारा तुम से अनुरोध-पूर्वक यह कहना है कि तुम इस प्रकार से इसकी एक बार जांच अवश्य करलो।

शरीर-शास्त्र के सिद्धान्त

हम निम्नांकित बातों में श्री० बरनार मैकफ़ैडन से सहमत हैं—

(१) हमारा शरीर हमारी सब से उत्तम जायदाद है।

(२) स्वास्थ्य की सम्पत्ति हमारी सब से बड़ी पूंजी है।

(३) रोग, स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों के भंग करने के लिए एक दंड है।

(४) प्रत्येक पुरुष पुरुषार्थ का एक अति ज्वलंत उदाहरण हो सकता है और प्रत्येक स्त्री स्त्रित्व का एक सुन्दर,

---

* वर्षा काल के चार महीने—ये आषाढ़ शुक्ला एकादशी से आरम्भ होते हैं और कार्तिक शुक्ला एकादशी को समाप्त।



औंध-राज्य के चीफ़ साहब की धर्मपत्नी २८ वर्ष की अवस्था

पृष्ठ ८५ देखिए

सुदृढ़ तथा सुडौल नमूना बन सकती है, यदि जीवन के नियमों का दृढ़ता-पूर्वक पालन किया जावे।

एक अंग्रेज़ विद्वान्, एमर्सन अपने 'शक्ति' नामक शीर्षक के एक लेख में कहता है, "पहिला धन स्वास्थ्य है। रोग एक अति हीन वस्तु है। इससे किसी का भला नहीं हो सकता। इसका मुख्य कार्य अपनी वृद्धि के उपायों को अपने वश में करना है। परन्तु स्वास्थ्य अथवा सबलता अपने कार्यों को पूरा करती हुई पार-पड़ौस तथा दूसरों के भी काम आती है"।

हमारी रानी साहिबा का अनुभव

जो लड़कियाँ अथवा स्त्रियाँ हमारे नियमों के अनुसार सूर्य-नमस्कारों को कर रही हैं, वे शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति में बहुत बड़ा लाभ प्राप्त कर रही हैं।

सूर्य-नमस्कार करने से जो कुछ थोड़े से लाभ हमारी रानी साहिबा को प्राप्त हुए हैं, वे ये हैं—

(१) पीठ और कमर की शक्ति—सूर्य-नमस्कार आरम्भ करने के ३ वर्ष पूर्व, जब आप पढ़तीं अथवा घंटे, आध घंटे तक कोई काम-काज करतीं तथा बैठी रहतीं, तब आपकी रीढ़ की हड्डी के ऊपर के भाग में दर्द हुआ करता था। यद्यपि अब आप पहिले से अधिक परिश्रम से तथा समय तक पढ़ती और काम करती रहती हैं, परन्तु आपकी रीढ़ में कहीं भी पीड़ा नहीं होती।

(२) पाचन-शक्ति—आपको जब तब पेट के रोग, जैसे अजीर्ण इत्यादि भी हो जाया करते थे। परन्तु अब वे सब दूर हो गये हैं।

(३) साधारण मासिक धर्म—जब से आपने सूर्य-नमस्कार करना आरम्भ किया है, तब से आपकी मासिक धर्म सम्बन्धी सब आपत्तियाँ जाती रही हैं। पहिले, जब आपको मासिक धर्म होता था, तब आठ दिन तक रुधिर-स्राव होता रहता था और बड़ी कठिन पीड़ा होती थी। परन्तु अब रुधिर-स्राव की मात्रा तथा दिन बिल्कुल साधारण हो गये हैं और किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता है।

(४) आपकी कमर में जब तब जो दर्द हो जाया करता था, वह अब जाता रहा है।

(५) बच्चा पैदा हो जाने के उपरांत स्त्रियों को जो दुर्बलता आजाती है, वह आपको अब बहुत दिनों तक नहीं सताती—जल्द दूर हो जाती है।

(६) आप सूर्य-नमस्कार करने से, जिस आयु की आप हैं, उससे कम की जान पड़ती हैं।

श्रीमती सौभ सीताबाई किर्लोस्कर का अनुभव

आपने सूर्य-नमस्कार को बीज तथा वेद-मंत्रों के साथ १६ जुलाई, सन् १९१९ ई० से करना आरम्भ किया है। आपको इनके ६ महीने के अभ्यास के उपरांत निम्नांकित कुछ लाभ प्राप्त हुए हैं—

(१) आपकी पीठ और कमर की सब पीड़ा जाती रही है।

(२) आपको गत ३९ वर्षों से मासिक धर्म सम्बन्धी जो कष्ट थे, वे सब धीरे धीरे दूर हो गये हैं और आप में जो गर्भपात होने की दुर्बलता थी, वह सब दूर हो गई है। इससे प्रकट है कि यदि सूर्य-नमस्कारों को नित्यप्रति नियमबद्ध होकर किया जावे, तो इसका गर्भाशय पर बहुत लाभदायक प्रभाव पड़ता है।

(३) आपकी गठिया जाती रही है।

श्रीमती सौभ० सीताबाई किर्लोस्कर ५० वर्ष की अवस्था



पृष्ठ ८६ देखिए

श्रीयुत आर० के० किर्लोस्कर ७० वर्ष की अवस्था



पृष्ठ ८७ देखिए

(४) आपके शरीर की सब व्यर्थ चर्बी उतर गई है और शरीर बलवान, दृढ़ तथा लचीला हो गया है।

(५) आपकी बांहों, टागों तथा ऊपर के आधे शरीर के पुट्ठे बलवान और दृढ़ हो गये तथा उभड़ गये हैं।

(६) आपका सीना दो इंच बढ़ गया है।

(७) आपके शरीर का रुधिर पहिले से अच्छा हो गया है। आपके चेहरे पर रंगत आगई है और नाखून पहिले से अधिक लाल हो गये हैं।

(८) आपके सिर के बालों का झड़ना बन्द हो गया है।

(९) आपके पसीने में जो दुर्गन्धि आया करती थी, वह अब जाती रही है।

(१०) आपकी पाचण-शक्ति बढ़ गई है।

(११) आपको इस बीच में कभी जुकाम अथवा खांसी तक नहीं हुई।

श्रीयुत आर० के० किर्लोस्कर का अनुभव

आप ५ वर्ष से सूर्य-नमस्कारों को बीज तथा वेद-मंत्रों के साथ प्रतिदिन प्रातःकाल नियमबद्ध होकर कर रहे हैं। आप प्रतिदिन १०० नमस्कार करते हैं और १०० नमस्कार करने में आपको आधा घंटा लगता है। आप इनके अतिरिक्त प्रतिदिन ६०० फ़ुट ऊंची एक पहाड़ी पर तेज़ी के साथ चढ़ और उतर कर टहलते भी हैं। आपको इस टहलने में क़रीब ४० मिनट लगते हैं।

आप सूर्य-नमस्कार आरम्भ करने के पूर्व दिन में दो बार भोजन करते थे। परन्तु इसके आरम्भ करने के कुछ महीनों के बाद आपने अपना संध्या-समय का भोजन छोड़ दिया है।

आपको जो लाभ सूर्य-नमस्कार करने से प्राप्त हुए हैं, वे ये हैं—

(१) आप सब प्रकार के शारीरिक रोगों से बंचित हो गये हैं। आपको इस बीच में कभी जुकाम तक नहीं हुआ। परन्तु आप जुकाम से, इससे पहिले, साल में कम से कम एक बार अवश्य पीड़ित हो जाते थे।

(२) आपको इन गत पांच वर्षों में केचुओं की शिकायत नहीं हुई। इसके लिए आपको हर साल एक अथवा दो बार सेंटोनीन औषधि का सेवन करना पड़ता था।

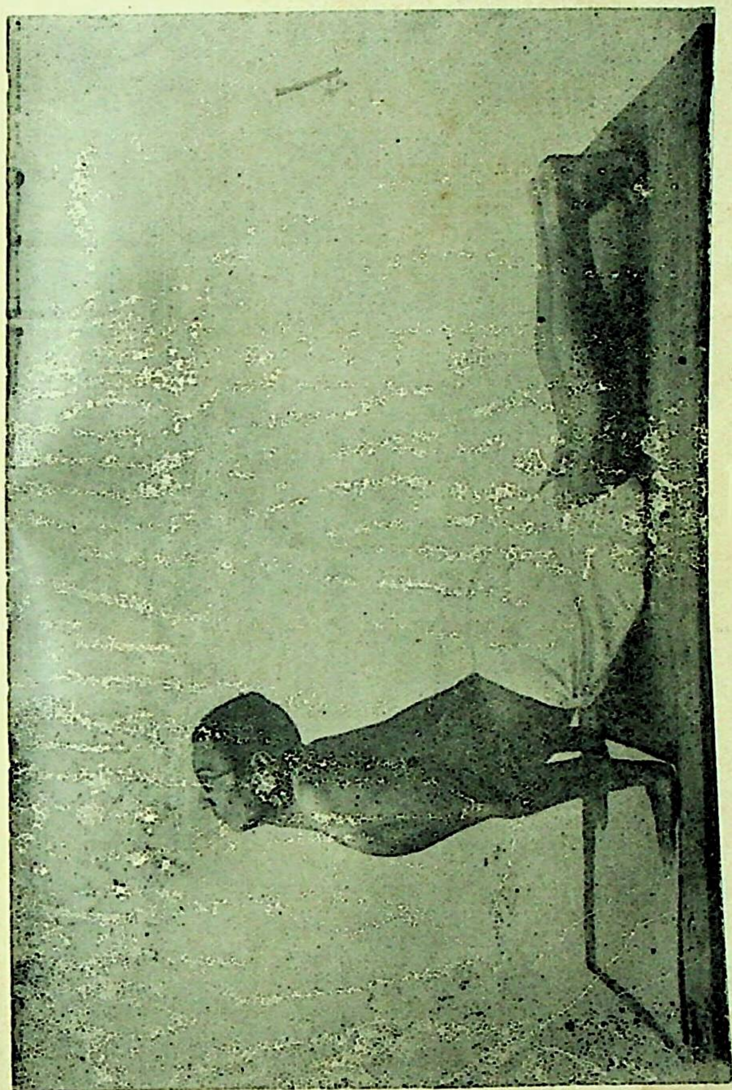
(३) आपके प्रायः गर्दन के नीचे के भाग तथा कमर में, जो दर्द हुआ करता था, वह अब पूर्ण रूप से जाता रहा है। इससे ज्ञात होता है कि इस व्यायाम से रीढ़, पीठ और कमर ये तीनों मज़बूत होते हैं।

(४) अब आपकी पाचण-शक्ति बिल्कुल ठीक हो गई है।

(५) आपकी शारीरिक तथा मानसिक शक्ति, अब ७० वर्ष की अवस्था में, एक ४५ वर्ष के युवा पुरुष के समान हो गई है।

श्रीयुत पंधारीनाथ ए० इनामदार का अनुभव

आप सूर्य-नमस्कारों को अपनी १४ वर्ष की आयु ही से कर रहे हैं। आप एक अच्छे खिलाड़ी और तैराक भी हैं। परन्तु आपके शरीर का विकास सूर्य-नमस्कार द्वारा ही हुआ है। आप तौल में १५० पौंड, अर्थात् क़रीब २ मन हैं। आपका यह वज़न ८ वर्ष से एकसा ही चला आ रहा है। आपकी ऊचाई ५ फ़ुट १० इंच है। आपकी यह ऊंचाई इसलिए उल्लेखनीय है कि आप के माता-पिता, जिनकी आप संतान हैं, दोनों ही बहुत छोटे क़द के थे।



श्रीयुत पंधारीनाथ ए० इनामदार, ३५ वर्ष की अवस्था

पृष्ठ ८८ देखिए

ग्यारहवाँ प्रकरण

औंध-राज्य के स्कूलों में सूर्य-नमस्कार का प्रचार

हमें यह लिखने में बड़ी प्रसन्नता अनुभव होती है कि हम अपने राज्य के लोगों को साधारणतः शारीरिक शिक्षा और विशेषतः सूर्य-नमस्कार की उपयोगिता को समझाने में समर्थ हो सके हैं, जिसका यह फल हुआ कि उन्होंने इस सम्बन्ध में इतना उत्साह दिखाया कि उन्होंने यह मांग उपस्थित की कि औंध-राज्य के प्रत्येक स्कूल में सूर्य-नमस्कार का करना राज्य के एक नये नियम को बना कर अनिवार्य कर दिया जावे।

बरनार्डशा की भांति जर्मन के बहिष्कृत क़ैसर का भी यह कहना है, " मैं ऐसे आदमियों को पसंद नहीं करता, जिनके केवल पुट्ठे खूब उभड़े हुए होते हैं। मैं उस आदमी को अधिक पसंद करता हूं, जिसके सम्पूर्ण शरीर का सब प्रकार से विकास हो गया है। मैं एक पेशेवर पहलवान की अपेक्षा, जिसने अपने महान बल के कारण संसार में सर्व्वोपरि नाम पाया है, उन दस हज़ार स्त्री-पुरुषों तथा बच्चों को अधिक अच्छा समझता हूं, जो नित्य प्रति किसी अच्छी नियम-बद्ध व्यायाम-प्रणाली का अनुसरण करते हैं। [फ़िज़िकल कलचर, फ़र्वरी, सन् १६२७ ई०]

यह हमारी हार्दिक इच्छा है कि हमारे स्कूलों के विद्यार्थी सूर्य-नमस्कार के लाभों को केवल अपने कुटुम्बियों ही को न

बतावें, किन्तु उनको अपने मिलने-जुलने वाले लोगों तक भी पहुंचा दें।

क्या हम अपने अन्य राजा लोगों तथा ब्रिटिश भारत के शिक्षा विभाग के अधिकारियों से यह आशा नहीं कर सकते कि वे अपने यहाँ सूर्य-नमस्कार का प्रचार करें, जिससे हमारे देशवासी स्वास्थ्य, सामर्थ्य तथा दीर्घायु प्राप्त करें ?

यदि हमारी यह इच्छा पूर्ण हो जावे, तो केवल ५ या १० वर्ष ही में हमारे स्कूल तथा कालिजों के विद्यार्थियों के स्वास्थ्य, शक्ति तथा उत्साह में बहुत कुछ उन्नति हो जायगी। हमको केवल अपने लड़कों ही के अच्छे स्वास्थ्य को देख कर सन्तोष न होगा, किन्तु पूर्ण संतोष हमें तब होगा, जब जैसी कि समाज को आवश्यकता है, हमारी लड़कियों का स्वास्थ्य भी अच्छा हो जायगा। लड़कियां ही आगे माता बनती हैं। इसलिए इनका स्वास्थ्य लड़कों के स्वास्थ्य से भी पहिले सुधरना चाहिए। आज से २० वर्ष पूर्व के लड़कियों के स्कूलों में शारीरिक शिक्षा का कोई प्रबन्ध न था। परन्तु कुछ थोड़े से समय से स्कूल तथा कालिजों में जो शिक्षा हमारी लड़कियों को दी जाती है, उसके दुष्परिणाम बहुत कुछ कम हो गये हैं। परन्तु इस प्रकार जो लाभ हुआ है, वह स्कूल तथा कालिजों की सब लड़कियों को प्राप्त नहीं होता, किन्तु बस थोड़ी ही सी लड़कियों तक पहुँच पाता है।

जो लड़कियाँ स्कूल तथा कालिजों में नहीं पढ़ती हैं, उनके लिए तो वास्तव में व्यायाम करने की कोई उपयुक्त प्रणाली ही नहीं है। सम्मिलित कुटुम्ब-प्रथा के टूटने के कारण घरों में लड़कियों की संख्या कम और मिलकर व्यायाम करने की प्रथा असम्भव होती जा रही है।

इस कारण किसी ऐसी व्यायाम-पद्धति की आवश्यकता,

आँध-राज्य के हाई स्कूल के विद्यार्थी सूर्य-नमस्कार कर रहे हैं



पृष्ठ ६० देखिए



औंध-राज्य के हाई स्कूल के विद्यार्थी सूर्य-नमस्कार कर रहे हैं



औंध-राज्य के हाई स्कूल के विद्यार्थी सूर्य-नमस्कार कर रहे हैं



जिसको अकेली लड़की भी पूर्ण रूप से कर सके, दिन प्रति दिन बढ़ती चली जा रही है। ऐसी लड़कियों के लिए हमारी सूर्य-नमस्कार सर्वोत्तम व्यायाम-क्रिया है। और यह स्मरण रखना चाहिए कि जैसे पुरुष, वैसे यदि स्त्रियां भी इस सूर्योपासना को अपनी अपनी व्यक्तिगत आवश्यकता के अनुसार करें, तो इससे केवल करनेवाले ही को स्थायी आनन्द प्राप्त न होगा, किन्तु उसकी सम्पूर्ण आगामी सन्तति भी इस आनन्द का उप-भोग करेगी।

इस सम्बन्ध में जर्मन देश के वर्तमान समय के वहिष्कृत क़ैसर के ये शब्द उल्लेखनीय हैं,—“भविष्य में स्त्रियों की शारीरिक उन्नति की ओर अधिक ध्यान दिया जावेगा। गत यूरुपीय महायुद्ध से हमें यह विदित हो गया है कि युद्ध में स्त्रियों के शारीरिक वल की कुछ कम सहायता की आवश्यकता नहीं होती। स्त्री-पुरुषों को शान्ति-काल तथा युद्ध-काल, दोनों ही में अपने अपने कर्तव्यों को पालन करने के लिए भली भांति तैयार रहना चाहिए। चाहे भविष्य में स्त्रियों को सेना में काम करना न पड़े; परन्तु इसमें तो कोई संदेह नहीं है कि शारीरिक शिक्षा का प्रचार तो संसार भर में स्त्री-पुरुष, दोनों ही जातियों में अनिवार्य रूप से करना ही होगा”। [फ़िज़िकल कलचर, फ़रवरी सन् १९२७ ई०]

सूर्य-नमस्कार का एक मुख्य गुण यह है कि इसको बहुत से आदमी मिलकर भी ड्रिल की तरह कर सकते हैं। और यदि इसका उचित रूप से निरीक्षण किया जावे, तो इसको लड़के और लड़कियाँ—सैंकड़ों लड़के-लड़कियाँ एक साथ कर सकते हैं, जिससे दो लाभ होते हैं, एक तो व्यायाम, दूसरे समय की किफ़ायत। सूर्य-नमस्कार को ड्रिल कराते समय विद्यार्थियों को आयु तथा ऊँचाई के अनुसार खड़ा करना चाहिए।

औंध-राज्य के सब प्राइमरी और मिडिल स्कूलों तथा हाई-स्कूल में जो आज गत पाँच वर्ष से सूर्य-नमस्कार की ड्रिल हो रही है, उसे देख कर हमें यह विश्वास हो गया है कि जितनी भी ड्रिलें हैं उनमें से यदि किसी को अनिवार्य किया जा सकता है, तो केवल सूर्य-नमस्कार ही को। क्योंकि इसके करने में सबसे कम कठिनाई पड़ती है और सब से अधिक लाभ प्राप्त होता है।

बारहवाँ प्रकरण

भोजन और व्यसन

भोजन के विषय में हम किसी सिद्धान्त को बताना नहीं चाहते हैं। परन्तु इस सम्बन्ध में हमें कुछ थोड़ी सी मोटी मोटी बातों का उल्लेख करना है।

यह बताने के पहिले कि हमारा भोजन क्या होना चाहिए, हम अपने पाठकों के सन्मुख यूरुप और अमरीका के इस विषय के कुछ आधुनिक विद्वान तथा अनुभवी पुरुषों के विचार उपस्थित करना चाहते हैं। क्योंकि यह प्रसिद्ध कहावत है. "महाजनेन गतः स पंथा"। अर्थात्—मार्ग वही है, जिस पर बड़े बड़े आदमी चल चुके हैं।

(१)

सर्वोत्तम भोजन क्या है ?

इस समय विज्ञान की इतनी भारी उन्नति होने पर भी रोग का बाजार वैसा ही भयंकर रूप से गरम है। अपने विभाग की सन् १९२५ ई० की रिपोर्ट में इंगलैंड के स्वास्थ्य-विभाग के मंत्री ने कहा है कि इंगलैंड में बीमारी के कारण सन् १९२५ ई० में २५० लाख सप्ताह के काम का हर्ज हो गया और सब से अधिक मृत्युएं भगन्दर से हुईं। इसलिए, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि वर्त्तमान समय के डाक्टर लोगों का

यह जोर देकर कहना ठीक है कि आजकल, बनिस्बत पहिले के, बीमारी का भोजन से बहुत बड़ा सम्बन्ध है।

यूरुप की 'एक नवीन स्वास्थ्य-सभा की भोजन-समिति' के सभापति, डाक्टर बैल्फ्रेज ने अपनी 'सर्वोत्तम भोजन क्या है?' नाम की पुस्तक में यह बतलाया है कि गत १६ वर्षों में जो भोजन सम्बन्धी नई नई खोजें हुई हैं, उन्होंने भोजन के प्राचीन सिद्धान्तों को उलट-पलट दिया है। उदाहरणार्थ—पहिले यह समझा जाता था कि जिस भोजन के करने से शरीर में गर्मी की मात्रा अधिक हो जावे, वह भोजन अच्छा है। इसलिए, पहिले भोजन का अच्छा या बुरा होना उसकी गर्मी की मात्रा पर निर्भर रहता था। परन्तु अब यह विचार निश्चय हुआ है कि भोजन का गुण उसकी मात्रा की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है। और भोजन के अच्छे अथवा बुरे गुण का होना, उसमें विटैमीन* के होने तथा न होने पर निर्भर है। अभी इस सम्बन्ध में, कि विटैमीन में क्या क्या वस्तुएं हैं, खोज नहीं हुई हैं। परन्तु यह निश्चय रूप से जान लिया गया है कि बिना विटैमीन के जीवन तथा स्वास्थ्य असम्भव है। यह बात पशु आदि जीवधारियों की परीक्षा तथा मनुष्यों के अनुभव से भलीभाँति सिद्ध हो चुकी है।

विटैमीन को चार भागों में बाँटा गया है—(१) विटैमीन (अ), (२) विटैमीन (ब), (३) विटैमीन (स) और (४) विटैमीन (द)। इनमें से प्रत्येक का स्वास्थ्य रक्षा पर बड़ा प्रभाव पड़ता है।

विटैमीन (अ) दूध, मक्खन, मलाई और अंडे के पीले भाग में पाई जाती है। इसलिए, यदि हम इन पदार्थों को काफी मात्रा में खाने लगें, तो विटैमीन (अ) हमको मिलने लगेगी। मार-

---

* वह वस्तु जो दूध, फल, तरकारी आदि खाद्य पदार्थों में होती है और शारीरिक उन्नति के लिए आवश्यक है।

गरीन* में किसी प्रकार की भी विटैमीन नहीं होती है। इसलिए, इसका मक्खन के बजाय प्रयोग न होना चाहिए —विशेष रूप से बच्चों के सम्बन्ध में। विटैमीन (अ) जानवरों के जोड़ों और मांस की भुनी हुई बोटियों में नहीं होती। परन्तु यह उनके जिगर और गुर्दों में पाई जाती है। विटैमीन (अ) को कभी कभी वृद्धिकारी विटैमीन भी कहते हैं। क्योंकि यह बच्चों के बढ़ने पर बड़ा प्रभाव डालती है। जिन बच्चों को यह काफ़ी मात्रा में नहीं मिलती है, उनको प्राय: रिकैट बीमारी (जिसमें हड्डियाँ नरम हो जाती हैं) हो जाती है और उनकी बढ़वार मारी जाती है। विटैमीन (अ) का अच्छी मात्रा में सेवन न करने के कारण वे रोग भी अवश्य हो जाते हैं, जो दुर्बलता के कारण उत्पन्न होते हैं। उस घृणा-जनक कौड नाम की मछली के तेल (काड लिवर ऑयल) का महत्व इसलिए ही अधिक है कि उसमें विटैमीन (अ) की मात्रा अधिक होती है।

विटैमीन (ब) अधिकतर गेहूँ, चावल और जौ इत्यादि के दाने के उस बीज-भाग में, जिसके कारण इनका पौदा उगता है, और इनकी भूसी में पाई जाती है। आजकल की कलों में इन अनाजों को पीसने से इनकी ये दोनों चीजें जाती रहती हैं। इसलिए, कल के आटे में विटैमीन (ब) का अभाव रहता है। हरी साग-भाजियों में भी विटैमीन (ब) होती है।

विटैमीनों में विटैमीन (स) ऐसे है, जैसे मनुष्य-समाज में बड़े आदमी। यह पत्तोंवाली साग-भाजियों और रसदार फलों में, जैसे काहू, गोभी, टमाटर, प्याज, नारंगी, संतरा, अंगूर और नीबू

---

* चर्बी को गरम करने और उसका तेल निकाल लेने के बाद एक ठोस चीज़ बच रहती है, जिसको किसी वनस्पति के तेल अथवा दूध या मक्खन में मिला कर फैंट देने से मारगेरीन तैयार हो जाती है।

आदि में पाई जाती है। साग-भाजी कच्ची होनी चाहिए—आग की पकी हुई नहीं।

डाक्टर बैलफ्रेज ने इस सम्बन्ध में कि विटैमोन (व) का हमारे भोजन में होना अति आवश्यक है कुछ उदाहरण उपस्थित किये हैं। इनको हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

(१) जब गत यूरुपीय महायुद्ध में डेनमार्क के लोगों को विदेशी मांस न मिल सका, तब वे साबत गेहूँ, चावल और राई [एक प्रकार का जौ] खा कर जीवित रहे। इनके अतिरिक्त उनके पास दूध, मक्खन, आलू और हरी साग-भाजियाँ भी थीं। परन्तु इस प्रकार के भोजन करने का यह आश्चर्य-जनक फल हुआ कि उनकी मृत्यु संख्या पहिले की अपेक्षा फ़ी सदी कम हो गई।

(२) इसी गत यूरुपीय महायुद्ध के समय मसेपोटामिया में एक बेरीबरी* नाम का बीमारी अंग्रेजी सेना के सिपाहियों में बड़े ज़ोर के साथ फैल गई। उनको जो भोजन की सामिग्री दी जा रही थी, उसमें सफ़ेद दिसावरी आटा, टीनों में भरा हुआ मांस तथा ऐसे ही अन्य सुरक्षित पदार्थ थे। उनको दूध, अंडे और ताज़ा साग, भाजियाँ अथवा फल न मिलते थे। संयोग से ऐसा हुआ कि सफ़ेद दिसावरी आटे का मिलना बंद होगया और उसके बजाय उनको हाथ की चक्की का पिसा हुआ आटा दिया जाने लगा। इस आटे

---

* यह एक घातक रोग है, जो दक्षिणी देशों की ओर और लंका द्वीप में प्रायः देखा जाता है। इसके रोगी के बहुत दुर्बल हो जाने के कारण मालाबार के रहने वाले इसे बेरीबरी कहते हैं। सन् १८२२ ई० में यह रोग कलकत्ते में भी प्रकट हुआ था। यह रोग मद्रास और बर्मा में, जहां चावल बहुत खाया जाता है, प्रायः हुआ करता है। यह रोग सर्दी लगने और भीगने से होता है। इसलिए, इसका वर्षा ऋतु ही में अधिक ज़ोर होता है।

में गेहूं का बीज-भाग तथा भूसी थी, जिसमें विटैमीन (व) होती है। इस आटे के खाने का यह फल हुआ कि बेरीबरी बीमारी दूर हो गई और जो बीमार थे, वे अच्छे हो गये। हाथ की चक्की के पिसे हुए आटे का पूरा भोजन करने के महत्व का इससे और अधिक ज्वलंत उदाहरण नहीं दिया जा सकता।

(३) बंदर तथा अन्य जानवरों पर जो विटैमीन (व) के संबंध में परीक्षाएं की गई हैं, उनसे यह ज्ञात होता है कि जब उनको ऐसा खाना दिया गया, जिसमें विटैमीन (व) का अभाव था, तब वे स्वास्थ्य तथा शक्ति में कम हो गये। परन्तु जब उनको वही खाना विटैमीन (व) के साथ खिलाया गया, तब वे अच्छे भले-चंगे हो गये।

जैसे और डाक्टर लोगों का विश्वास है, उसी प्रकार डाक्टर बैलफ्रेज का भी विश्वास है कि हम में बहुत से आदमी अधिक मात्रा में भोजन करते हैं—विशेषरूप से मांस का भोजन। इसलिए, वह अपनी ' सर्वोत्तम भोजन क्या है ? ' नाम की पुस्तक को इस उपदेश को लिख कर समाप्त करता है—

" अधिक मात्रा में भोजन करने की आदत को छोड़ो, नहीं तो मृत्यु तुम्हारे लिए औरों की अपेक्षा तिगुना मुंह फाड़े खड़ी हुई है। " ['टाइम्स आफ़ इंडिया, बम्बई, ६ नवम्बर, सन् १९२६ ई०]

(२)

विटैमीन

ओ० ल्योनार्ड, एम० डी०, ने ब्रिटेन के विश्व-कोष के १२ वें संस्करण की ३२ वीं जिल्द के ९३१ पृष्ठ पर विटैमीन के सम्बन्ध में यह लिखा है, " विटैमीन शब्द आज कल उन वस्तुओं के लिए प्रयोग किया जाता है, जो दूध, फल, तरकारी आदि खाद्य-पदार्थों में होते हैं और शारीरिक उन्नति के लिए आवश्यक हैं। इन

वस्तुओं के विषय में कि ये हैं क्या अभी निश्चय रूप से ज्ञात नहीं हुआ है। परन्तु इतना इनके सम्बन्ध में अवश्य विदित हो गया है कि ये मनुष्य तथा अन्य जानवरों के बच्चों के स्वाभाविक विकास तथा प्रौढ़ अवस्था के मनुष्यों के लिए तथा जानवरों के स्वास्थ्य और सुख के लिए अति आवश्यक हैं। ये अधिकतर कच्चे भोजन (आग का न पका हुआ) और विशेष रूप से बिना आग के पके फलों और साग-भाजियों में रहते हैं। ये आग पर पकने, सूखने, छिलका उतरने तथा अन्य सफ़ाई की क्रियाओं से या तो क्षीण हो जाते हैं, या बिल्कुल ही नष्ट हो जाते हैं।

खाद्य-पदार्थों के स्वाभाविक रूप में अनेक प्रकार की विटैमीनें होती हैं। परन्तु इनमें से अब तक [सन् १९२२ ई० तक] केवल तीन ही अलग की जा सकी हैं। ये तीन विटैमीन ये हैं—(१) विटैमीन (स), (२) विटैमीन (व), और विटैमीन (अ)।

(१) विटैमीन (स)—यह विटैमीन उन तीनों विटैमीनों से, जो अब तक अलग की जा सकी हैं, सब से अधिक मुलायम होती है। यह सब प्रकार के कच्चे (आग के न पके हुए) फल और साग-भाजियों में अच्छी अधिक मात्रा में मौजूद है। और इस सम्बन्ध में जो यह कहावत है कि जिन खाद्य-पदार्थों को सूर्य ने चूम लिया है, अर्थात् जिन पर सूर्य का प्रकाश पड़ता है, वे उन पदार्थों की अपेक्षा, जिन पर सूर्य का प्रकाश नहीं पड़ता है, अधिक लाभकारी होते हैं, वह यह सिद्ध करती है कि जो साग-भाजियाँ ज़मीन के ऊपर पैदा होती हैं, उनमें यह विटैमीन बनिस्बत उनके, जो ज़मीन के अन्दर पैदा होती हैं, अधिक होती है। यह विटैमीन ताज़े दूध में बहुत होती है। परन्तु उसके उबालने से वह सब नष्ट हो जाती है। इस

विटैमीन को चैतन्यता बीज के अंकुरित होने की अवस्था में अधिक बढ़ जाती है। जैसे सेम, मटर, गेहूं और जौ के दानों में, उनकी साधारण शुष्क तथा शान्त अवस्था में यह विटैमीन नहीं होती है। परन्तु यदि उनको जल में भिगो दिया जावे और अंकुरित कर लिया जावे, तो उनमें यह विटैमीन शीघ्र ही अधिक मात्रा में उत्पन्न हो जाती है। यह जीवन में बड़े काम की चीज़ है। इसको ऐसे यात्रियों को, जिनको दुर्गम स्थानों की यात्रा करनी है, कभी न भूलना चाहिए।

(२) विटैमीन (ब)—इस के अभाव ही के कारण बेरीबरी नाम की बीमारी उत्पन्न होती है। बेरीबरी नसों की बीमारी है और यह परीक्षा करके देख लिया गया है कि यदि विटैमीन (ब) भोजन में न होवे, तो पैलग्रा * आदि रोग उत्पन्न हो जाएंगे। और यदि यह भोजन में रहे, तो ये रोग दूर हो जाएंगे। इसलिए, इस विटैमीन को प्रायः 'नस-रोग नाशक' भी कहते हैं। यह विटैमीन बच्चों की बढ़वार, विकास तथा कुशल के लिए अति आवश्यक है। यह खाद्य-पदार्थों के स्वाभाविक रूप, अनाजों तथा अंडों में अधिकता से पाई जाती है। यह जानवरों के दिमाग़, जिगर पैंक्रिअस † और गुर्दों में भी मिलती है। परन्तु यह पुट्ठों अथवा मामूली भोजन में नहीं होती। ख़मीर में यह बहुत अधिक मात्रा में पाई जाती है। साग-भाजियों में यह दालवाले अनाजों में मिलती है। इनके भीतर यह सब जगह एक सी पाई जाती है। परन्तु खाने के अनाजों में जैसे गेहूं,

---

* यह एक प्रकार का रुधिर का रोग है। यह बहुत बुरा और संघातक होता है।

† यह शरीर का वह अंग है, जो पेट के पीछे होता है। यह एक मांस का लोथड़ा होता है। इस पर दाने होते हैं।

जौ आदि में केवल छिलके ही में होती है। इसीलिए बे-मांड का चावल और बिना छने आटे की रोटी खाने का अधिक महत्व है। यह जल में हल हो सकती है—विशेष रूप से खारी जल में और शराब में, परन्तु चर्बी में नहीं। यह अधिक गर्मी को सहन नहीं कर सकती। यदि इसको थोड़ी ही गर्मी देकर उबाला जावे, तो यह रहती है, वरना १२० अंश की गर्मी पर यह नष्ट हो जाती है।

(३) विटैमीन (अ)—तीसरी विटैमीन के विषय में सब से पहिले सन् १९१३ ई० में श्रीयुत कौलुम और श्रीयुत वेविस, इन दोनों विद्वानों ने लिखा था। उन्होंने यह बतलाया था कि इसके सेवन न करने से आंखों में रोग उत्पन्न हो जाते हैं, जैसे पलकों की सूजन, पुतली का घाव, आंखों का बिल्कुल चलाजाना और अन्त में मृत्यु का हो जाना। जब ये रोग ख़ूब बढ़ भी गये हैं, तब भी ये इस विटैमीन के सेवन करने से अच्छे हो गये हैं। बच्चों का रिकैट रोग इसी विटैमीन के सेवन न करने से होता है। बच्चों की बढ़वार तथा स्वाभाविक विकास के लिए इस विटैमीन की बड़ी आवश्यकता है। यह (१) जानवरों की चर्बी, जैसे दूध, मक्खन तथा शरीर की ग्रंथियों में और (२) उन पौदों के हरे पत्तों में, जो खाने के काम में आते हैं, पाई जाती है। यह कनैक्टिव टिस्यू जैसे पुट्ठे, हड्डी, दांत और रुधिर इत्यादि और रीज़र्वड् टिस्यू, जैसे चर्बी इत्यादि को छोड़ कर और शेष सम्पूर्ण शरीर में पाई जाती है।

यह विटैमीन जैतून तथा अन्य वनस्पतियों के तेलों में नहीं पाई जाती। परन्तु 'कौड' नाम की मछली के जिगर के तेल में यह बहुत मात्रा में मिलती है। यह तेल में हल होजाती है

परन्तु जल में नहीं। इसमें अन्य दोनों विटैमीनों से गर्मी सहन करने की शक्ति अधिक होती है।

सन् १९२१ ई० में इस विटैमीन के विषय में हमारा बस इतना ही निश्चित ज्ञान था। इस ज्ञान का अभी आरम्भ ही है। इस सम्बन्ध में अधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए अभी बड़ा भारी विस्तृत क्षेत्र पड़ा हुआ है। क्योंकि विटैमीन के मालूम हो जाने से हमारा बीमारियों की उत्पत्ति तथा कारणों के विषय में जो विचार था, वह अब बिलकुल बदल गया है। कुछ थोड़ा समय हुआ, तब तक हमारी रोग के विषय में यह धारणा थी कि इसको कोई अज्ञात तथा सूक्ष्म वस्तु उत्पन्न करती है। परन्तु विटैमीन आजकल हमको यह बता रही है कि रोग अपनी ही ग़लतियों से पैदा होता है, जिसके लिए सभ्य अथवा असभ्य दोनों प्रकार के मनुष्य अपराधी हैं। हमने अपने ध्यान को जीवाणु और उनके विष की ओर आकर्षित करके प्रश्न के उस पहलू को बिलकुल ही छोड़ दिया है, जो हमारी रक्षा से सम्बन्ध रखता है। हमने रोग-ग्रस्त जीवाणुओं से बचने के लिए अपने बच्चों के दूध को उबालने आदि क्रियाओं से निःशक्ति कर दिया है जिससे दूध की सब विटैमीन नष्ट हो जाती है और बच्चों में एक जीवाणु ही का सामना करने की शक्ति कम नहीं हो जाती, किन्तु सब जीवाणुओं के सामना करने की शक्ति कम होजाती है। विटैमीन के महत्व ने हमको यह बता दिया है कि यदि बच्चों का स्वाभाविक विधि से लालन-पालन किया जावे, तो उन पर वे बहुत सी बीमारियाँ असर नहीं कर सकतीं, जो आजकल हमारे जीवाणु-शास्त्र तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी ज्ञान के होते हुए भी बच्चों की मृत्यु-संख्या को इस हद तक बढ़ा रही हैं, जो आश्चर्य-जनक और महा भयानक है। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि इन

बीमारियों से बचने के लिए पहिले तो बच्चे का स्वस्थावस्था में जन्म लेना आवश्यक है, दूसरे इसके अनन्तर उसके बचपन के समय में उसका उचित रूप से लालन-पालन करना। परन्तु उचित लालन-पालन तभी हो सकता है, जब जच्चा को इस प्रकार का भोजन दिया जावे, जिस में आवश्यक विटैमीनों के अंश इतनी अधिक मात्रा में हों कि जच्चा और बच्चा दोनों के लिए काफ़ी हों। ऐसी बीमारियों के, जो विटैमीन के सेवन न करने से होती हैं, जैसे स्कर्वी* बेरीबरी [९६ पृष्ठ देखो], पैलग्रा [९९ पृष्ठ देखो], और आंखों का दुखना, जिनको 'हीनता के रोग' भी कहते हैं, लक्षणों के उभड़ने के पहिले साधारण स्वास्थ्य में कुछ कमी तो अवश्य ही आजाती होगी। और यदि बस इतनी ही कमी बनी रहे, तो? इसलिए, यह सोचना, जैसा कि प्रायः होता है, कि विटैमीन की थोड़ी मात्रा भी बीमारियों को दूर कर देगी, व्यर्थ तथा वास्तव में भयानक है। आवश्यकता, इसलिए, इस बात की है, कि विटैमीन का सेवन केवल थोड़ी ही मात्रा में नहीं, किन्तु खूब अधिक मात्रा में करना चाहिए।

बीमारी की ऐसी अवस्था में, जिसमें उसके लक्षण स्पष्ट नहीं होते हैं, अन्दर रिसने वाली ग्रंथियें, जैसे टैटुए के नीचे की ग्रंथि, सीने की ग्रंथि, गुर्दे के ऊपर की ग्रंथि, मस्तिष्क-ग्रंथि तथा जनन-ग्रंथि आदि के ठीक तौर से काम न करने के कारण बहुत से रोग उत्पन्न हो जाते हैं। बीमारी की इसी अस्पष्ट दशा में वे रोग उत्पन्न होते हैं, जो शरीर के रचनात्मक तथा ध्वंसात्मक कर्मों से

---

* यह रुधिर का रोग है। यह जल-यात्रावालों को बहुधा होता है। यह रोग उनको होता है, जिनको ऋतु की साग-भाजी खाने को नहीं मिलती है। जब यह समुद्र के यात्रियों को होता है, तब जल-स्कर्वी और जब यह स्थल के यात्रियों को होता है, तब थल-स्कर्वी कहलाता है।

सम्बन्ध रखते हैं, जैसे छोटे जोड़ों की गठिया, जोड़ों के भीतर की हड्डी की सूजन और बहुमूत्र इत्यादि। ये रोग या तो विटैमीन की कमी ही के कारण पैदा होते हैं या तब पैदा होते हैं, जब रिसने-वाली ग्रंथियों को उनकी आवश्यक सामिग्री नहीं मिलती है। यह कल्पना की जा सकती है कि विटैमीन का यह अभाव पेट और अंतड़ियों के भाग में प्रकट होता है।

पाचरण के विकार, अंतड़ियों का आलस्य, अपैंडिक्स* का बढ़जाना और बड़ी अंतड़ियों की सूजन, ये सब अधिकतर उन रोगियों के होते देखे गये हैं, जिनके भोजन में विटैमीन का अभाव रहता है।

इसमें यदि किसी का विश्वास न हो, तो वह अंतड़ियों के रुधिर को रुकावट अथवा पुराने क़ब्ज़ को देखकर, जिनको आजकल आम शिकायत है, विश्वास कर सकता है। यह प्रायः आजकल कहा जाता है कि दांतों की बीमारियां गत बीस वर्ष से बढ़ती ही चली जा रही हैं। परन्तु इस बीच में बच्चों को ताज़ा और पुष्टि-कारक भोजन देना बन्द हो गया है और उनको ऐसा निर्जीव भोजन दिया जाता है,जो चबाने के काम का नहीं है और जिसके उबालने तथा तैयार करने की विधि से, उसकी सब विटैमीन नष्ट हो जाती है। और दांतों के निकलने तथा उनके बढ़ने के लिए विटैमीन की बड़ी आवश्यकता है। भोजन-शास्त्र के विषय में जो हमारे अब तक विचार थे, उनको विटैमीन ने बहुत कुछ बदल दिया है। पहिले † प्रोटीन, ‡ कर्बोहाइड्रेट्स, चर्बी और नमक,

---

* यह वहां होता है, जहाँ छोटी बड़ी अंतड़ियां मिलती हैं। इसके बारे मे अभी तक यह मालूम नहीं हुआ है कि इसका काम क्या है?

† एक पुष्टिकारक पदार्थ।

‡ यह शरीर में शकर का रूप ग्रहण कर लेता है।

इन भोजन के मुख्य अंगों की जो मात्राएं निश्चित थीं और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक समझी जाती थीं, वे अब विटैमीन के आविष्कार ने ऐसी बदल दी हैं कि अब इस समस्त प्रश्न का फिर नये सिरे से अन्वेषण तथा अध्ययन करना पड़ेगा और केलोरी (उष्णता की एक मात्रा) के अचूक सिद्धान्त का, जो इस विचित्र कल्पना पर निर्भर था कि भोजन की उष्णता की जो मात्रा मनुष्य के शरीर में होती है, वही मात्रा भोजन के जांच करने वाली शीशे की नली में भी होती है, पूर्णरूप से विस्मरण हो जायगा।

विटैमीन से भावी विज्ञान-वेत्ताओं को सबक़ सीखना चाहिए। यह हमको इस बात की याद दिलाती है कि मनुष्य के विकास के लिए प्रकृति ने उन खाद्य-पदार्थों को दिया है, जो उसकी बढ़वार, विकास तथा सुख के लिए आवश्यक हैं। परन्तु मनुष्य ने, कभी लोभ में फँसकर और अधिकतर अपने को बड़ा बुद्धिमान समझ कर, इन पदार्थों को अग्नि पर पकाकर, निःशक्त करके और साफ़-सुथरा करके, इनके गुणों को नष्ट कर दिया है। इसका फल यह हुआ है कि जो बीमारियाँ मनुष्य-समाज में पहिले से फैली हुई थीं, वे केवल और अधिक फैल ही नहीं गई हैं, किन्तु अब और दूसरी नई बीमारियाँ भी पैदा हो गई हैं। [श्री० ल्योनार्ड का लेख समाप्त]

(३)

उपयुक्त भोजन

इस समय की आवश्यकता यह है कि यह विचार किया जावे कि मनुष्य पूर्ण स्वास्थ्य तथा उच्चकोटि की सामर्थ्य किस प्रकार प्राप्त कर सकता है ?

आजकल जो हमारी दशा है, उसको इस प्रकार उन्नत बनाना चाहिए, जिससे शरीर और उसके सब अंग अपनी पूर्ण सामर्थ्य के साथ काम कर सकें। इसके लिए भोजन और पुष्टिकारी भोजन सबसे मुख्य वस्तु है, जिसकी ओर सबसे अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। अच्छे और उपयुक्त भोजन की शरीर के लिए बड़ी आवश्यकता है।

सच्चे स्वास्थ्य की प्राप्ति तभी हो सकती है, जब प्रकृति के कठोर नियमों का निष्ठा-पूर्वक पालन किया जावेगा। यह स्मरण रखना चाहिए कि स्वास्थ्य-रक्षा के जो नियम पौदे तथा अन्य जीवधारियों के लिए हैं, वे ही नियम मनुष्यों के लिए भी हैं।

मनुष्य ने अपनी बुद्धि के कारण अपने प्राकृतिक वातावरण में वह स्वच्छन्दता प्राप्त कर ली है, जो उसके अस्तित्व तक को खतरे में डाले रहती है। आजकल शरीर में विकार तथा रोगों का उत्पन्न होना एक अनिवार्य बात मान ली गई है और इनके द्वारा हमारे समय तथा शक्ति का जो ह्रास होता है, उसकी ओर हमारा भाग्य-भरोसे रहने का जो स्वभाव बनता जारहा है, वह अत्यन्त शोचनीय है।

शहरों में बच्चों की भयानक मृत्यु-संख्या, स्त्री-पुरुषों के शरीरों की दुर्बलता तथा अनेक प्रकार के भयंकर रोगों की वृद्धि, इस बात की आवश्यकता को प्रकट करते हैं कि हमारे जीवन के उस दोष को ढूंढ निकालने का उत्कट प्रयत्न किया जावे, जो मनुष्य-समाज में सब जगह फैला हुआ है।

खाद्य-पदार्थों में एक अब तक के अज्ञात अंग, 'विटैमीन' के आविष्कार ने, जो आज से २५ वर्ष पूर्व हुआ है, विज्ञान-वेत्ताओं की इस बात की ओर आखें खोल दी हैं कि अभी खाद्य-पदार्थों

के विषय में उनके रासायनिक अंगों के अतिरिक्त और भी बहुत कुछ पता लगाना है।

रोग से ग्रसित होने के अतिरिक्त बहुत से आदमी ऐसे हैं, जिनका शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य जैसा होना चाहिए था, वैसा नहीं है। जो लोग सदा थके-मांदे और शिकायत करते रहते हैं, जो अपने काम को उदास तथा दुखी होकर करते हैं, जो उत्साह-हीन हो गए हैं और जो अपने जीवन को भार समझते हैं, ऐसे असंतुष्ट तथा ठाली मनुष्य, जो प्रत्येक जाति में बहु-संख्या में पाये जाते हैं, समाज की उन्नति के रथ को रोकते, उसमें चारों ओर विषमता फैलाते तथा क्रान्ति उत्पन्न करते हैं।

और कहीं नहीं तो इंगलैंड और अमरीका में कम खानेवालों की अपेक्षा अधिक खानेवाले लोग अधिक संख्या में हैं हीं। और यह एक सर्व-सम्मत बात है कि हम अपने सन्मुख अच्छे अच्छे भोजनों का परोसा हुआ देख कर जितनी मात्रा में हमारे शरीर को भोजन की आवश्यकता होती है, उतनी मात्रा से कहीं अधिक भोजन कर जाते हैं। आवश्यकता से अधिक खाने के दो कारण हैं—एक तो भोजन में खट्टे पदार्थों का होना, दूसरे मीठे अथवा नमकीन पदार्थों का होना। इन दोनों प्रकार के भोजनों को अधिक खा लेने की इच्छा से अधिक मात्रा में भोजन कर लिया जाता है। जो भोजन स्वाद के लिए खाये जाते हैं, उनको अधिक मात्रा में खाना उचित नहीं है।

सभ्यता की ओर से जहाँ आशीर्वाद मिलते हैं, वहां दंड भी मिलते हैं। इन दंडों में सबसे बुरे दंड अस्वस्थता और दुर्बलता हैं, जो अपने स्वाभाविक भोजन के न करने से उत्पन्न होते हैं।

ताज़े कच्चे (आग का न पकाहुआ) और अच्छे भोजन के यथेष्ट मात्रा में न मिलने के कारण आजकल शहर और क़स्बों के

बहुत से लोगों के स्वास्थ्य और शक्ति का ह्रास होरहा है। ये लोग चूंकि सच्चे पुष्टिकारक भोजन को नहीं पहचानते हैं, इसलिए ये यह समझे हुए हैं कि हम बहुत अच्छा भोजन कर रहे हैं।

यदि भोजन के साथ हरे, ताज़े और अच्छे फल और मेवे तथा घी-दूध मिल जायँ, तो इनके द्वारा सब प्रकार के आवश्यक खनिज नमक प्राप्त हो जाएंगे। ये नमक मनुष्य के शरीर के लिए उतने ही आवश्यक हैं, जितने ये पौदों के लिए। [डाक्टर बैलफ़ोज की पुस्तक, 'सर्वोत्तम भोजन क्या है'? से उद्धृत]

(४)

रिवाज और इच्छा

भोजन के विषय पर पूर्ण-रीति से विचार करते समय हमको इस बात से सावधान रहना चाहिए कि हमारे विचार पर कहीं अपनी रिवाज और इच्छा का प्रभाव न पड़ने पावे। क्योंकि, शरीर पर आदत का बड़ा प्रभाव पड़ता है। आदत वही करा लेती है, जो वह चाहती है। यदि हम किसी बात की आदत डालना चाहें, तो आसानी से पड़ सकती है। और जब शरीर उससे अभ्यस्त हो जाएगा, तब जैसे उसको अपनी किसी पुरानी आदत के लिए भोजन की आवश्यकता थी, उसी प्रकार उसको इस नयी आदत के लिए भी आवश्यकता प्रतीत होगी। [श्री अर्विंग एस० कपूर की पुस्तक, 'पूर्ण स्वास्थ्य के लिए मार्ग' से उद्धृत]

(५)

सादा और स्वाभाविक भोजन

डाक्टर एम० निकोल, एम० डी० का कथन है, कि "यदि भोजन के विषय में कोई सिद्धान्त ठीक है, तो यह भी अवश्य ठीक है कि

वास्तव में प्रत्येक मनुष्य खूब दूध और खूब साग-भाजी तथा फल खाने की आवश्यकता अनुभव करता है। भोजन के इन पदार्थों में केवल सब प्रकार की विटैमीन ही नहीं होती, किन्तु इनमें बहुत से खनिज नमक तथा लोहे का अंश, जो शरीर की उचित वृद्धि तथा पोषण के लिए उतने ही आवश्यक हैं, पाये जाते हैं"।
['फ़िजिकल कलचर,' मार्च सन् १९२७ ई०]

(६)

विटैमीन और शक्ति

अमरीका के सुप्रसिद्ध डाक्टर जान मौक्सवैल के विचार—

"बहुत कम ऐसे स्त्री पुरुष हैं, जो यह कह सकते हैं कि हमने कभी बीमारी का अनुभव नहीं किया है, हम सब प्रकार से स्वस्थ और शारीरिक तथा मानसिक अवस्था से जैसे स्वाभाविक रूप से होने चाहिए, वैसे ही हैं।

"आज कल हम जो भोजन करते हैं, वह हमें सीधा मृत्यु के निकट ले जा रहा है। जब तुम शरीर से बहुत थक जाते हो, तब वृद्धावस्था का आगमन होने लगता है। जब तुम थकने लगो, तब समझो कि अब वृद्धावस्था आगई।

"परन्तु यदि तुम्हारे अन्दर विश्वास है, तो तुम फिर युवा हो सकते हो। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि स्वास्थ्य, दीर्घायु तथा आनन्द की प्राप्ति के लिए स्वाभाविक जीवन व्यतीत करना आवश्यक है।

"बस, अपने भोजन को बदल दो, तुम्हारी दशा भी बदल जायगी।

"हमारी अधिकतर झूठी इच्छाएँ होती हैं। हम अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति को नहीं देखते और न बुद्धि से काम लेते हैं।

" हमने अपने शरीरों को ऐसे भोजन खा खा कर, जिनमें विटैमीन और खनिज नमकों का अभाव है, निःशक्त बना लिया है।

" हमारे बहुत से कष्ट नियमानुकूल व्यायाम तथा उपयुक्त भोजन के न करने के कारण उत्पन्न होते हैं।

" आजकल का हमारा भोजन, जो अस्वाभाविक तथा जिसमें नमक और विटैमीन का अभाव है, हमारी शारीरिक तथा मानसिक शक्ति को हानि पहुँचता है।

" चाय और कहवे की पीने की आदत से उनकी कैफ़ीन * और केफ़ीटैनिक एसिड † से धमनियों और पेट पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

" अस्वाभाविक तथा ऐसे भोजन करने से, जिनमें नमक तथा विटैमीन नहीं होते हैं, बीमारियों के रोकने की शक्ति चली जाती है।" [शिकागो (अमरीका) के पत्र, 'हिल्ज़ गोल्डन रूल' के जनवरी, सन् १६२० ई० के अंक से उद्धृत]

(७)

(अ) मांस खाना आवश्यक नहीं है

डाक्टर एस० एच० वैलफ़ेज, एम० डी० के विचार—

" जानवरों का मांस खाना कोई आवश्यक नहीं है। जिन लोगों के भोजन में मांस नहीं होता है, उनको यह न समझना चाहिए कि बिना मांस खाये उनको कोई हानि पहुँचेगी। यह स्मरण रखना चाहिए कि मनुष्य-जाति में कुछ उत्तम जातियाँ ऐसी हैं, जो कभी कभी मांस खाती अथवा कभी भी मांस नहीं खाती हैं। यह देखा गया है कि जो लोग निरामिष भोजी (मांस नहीं खाते)

---

* यह चाय का एक अंश है, जो धमनियों को उत्तेजित करता है।

† यह कहवे का एक अंश है, जो क़ब्ज़ करता है।

हैं, वे आमिष-भोजियों (मांसाहारी) के समान अथवा उनसे भी अधिक सहन-शील होते हैं।

" जो लोग मांस नहीं खाते, परन्तु दूध, अंडे तथा पनीर खाते हैं, वे सब प्रकार से कुशल-पूर्वक रहते हैं। इन लोगों का कथन है कि मांस खाना आवश्यक नहीं है। उसमें जानवर के शरीर के दूषित पदार्थ मिले रहते हैं, उसको लोग प्रायः अधिक मात्रा में खा लेते हैं, उसके खाने के उपरान्त आलस्य अधिक आता है, उसके न खानेवाले लोगों ही में सबसे बड़े विद्वान और बड़े बड़े आदमो जिनसे मनुष्य-जाति को लाभ पहुँचा है, हुए हैं और उसका खाना असभ्यता का एक लक्षण है, जो अब तक शेष है। इस कथन में बहुत कुछ सत्य है। इसके साथ साथ हम यह भी बता देना चाहते हैं कि मांस खाने का जो समर्थन आर्थिक आधार पर किया जाता है, अर्थात् मांस में कम व्यय होता है, वह बिल्कुल व्यर्थ तथा निराधार है। क्योंकि यह देखा जाता है कि एक गाय के खिलाने-पिलाने में जो ख़र्च पड़ता है, उसके १८ फ़ी सदी मूल्य का पदार्थ उससे (गाय से) दूधादि के रूप में हमें मिल जाता है। परन्तु भेड़ और बैल के ख़र्च से हमें केवल उसके ३·५ फ़ी सदी मूल्य ही का पदार्थ मिलता है।

"जानवरों से जो प्रोटीनवाले खाद्य-पदार्थ मिलते हैं, उनमें एक ऐसा पदार्थ है, जिसमें न केवल सर्वोत्तम प्रकार की प्रोटीन ही है, किन्तु उसमें विटमीन और नमक भी अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। दूध वास्तव में अकेला ही पूरा भोजन है। इसमें अच्छे क़िस्म की चर्बी और शकर भी होती है। केवल १५ छटांक दूध में इतनी मात्रा में सर्वोत्तम प्रोटीन होती है, जो दिन भर के भोजन के लिए काफ़ी होती है। यदि दूध को धीरे धीरे पिया जावे, तो वह बहुत आसानी से पच जाता है क्योंकि उसको धीरे धीरे

पीने से उसका पेट में अधिक मात्रा में दही नहीं बनता है। इसको भोजन के और पदार्थों के साथ भी मिलाया और पकाया जा सकता है।" ['सर्वोत्तम भोजन क्या है' से उद्धृत]

(ब) मांस खाना सर्वथा अनावश्यक है

डाक्टर यूजेन क्रिस्टेन, एफ़० एस० डी० के विचार—

"यदि कोई विचारवान मनुष्य भोजन की रसायन का थोड़ा सा भी अध्ययन करे, तो भी उसको यह विदित हो जायगा कि मांस खाना सर्वथा अनावश्यक है। मांस में भोजन की वे आवश्यक वस्तुएं कोई भी नहीं होतीं, जो दूसरे पदार्थों में पाई जाती हैं। परन्तु इसमें जहर की मात्रा, जो अन्य खाद्य-पदार्थों में नहीं पाई जाती और जिससे शरीर में विकार उत्पन्न हो जाता है, अधिक होती है। पाक-शास्त्र को यदि हमारी मा-बहन तथा बहू-बेटियों को पढ़ाया जावे, तो उनको यह ज्ञात हो जायगा कि हमारे शरीर का प्रत्येक रासायनिक तत्व, जिससे यह बना है, सर्वोत्तम रूप में वनिस्पति ही से प्राप्त हो सकता है।

"अधिक मांस मत खाओ, अधिक मांस खाने से किसी की उन्नति नहीं हुई है"। ['१०० वर्ष तक कैसे जीवित रह सकते हैं ?' नाम की पुस्तक से उद्धृत]

(स) मांस खाने से आयु कम होती है—

यह श्रीयुत हिरेल्ड एल० ग्रहाम का कथन है।

(द) फलाहार

डाक्टर जेन ओल्डफ़ील्ड का कथन है,—"मुझे मांस न खाये हुए २५ वर्ष से अधिक समय व्यतीत हो गया है। मैंने निरामिष तथा आमिष दोनों प्रकार के भोजनों की भली प्रकार परीक्षा

करली है। मुझे यह विश्वास हो गया है कि उच्च कोटि तथा सभ्यता-पूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए आमिष-भोजन को त्याग कर निरामिष भोजन अर्थात् फलाहार करना चाहिए"। ['सभ्य लोगों का भोजन' नाम की पुस्तक से उद्धृत]

(८)

अल्पाहार

श्रीयुत टामस ए० एडोसन का, जिनकी अवस्था क़रीब ८० वर्ष की है और जो संसार में सबसे बड़े आविष्कर्ता हैं, कहना है, "मेरे पिता और पितामह को यह अनुभव हो गया था कि दीर्घायु तथा पूर्ण स्वस्थता की प्राप्ति नियमानुकूल आहार करने में सन्निहित है। मेरे अपने विषय में यह है कि मैं केवल इसलिए खाता हूँ कि मैं जीवित रहूँ। इसका फल यह हुआ है कि मेरा शरीर हानिकारी व्यर्थ भोजन से दूषित नहीं हुआ है। मेरी अंतड़ियाँ इतनी कोमल हैं, जितनी एक बच्चे की"।

(९)

भोजन के आवश्यक अंग

साग (तरकारी) खाने की आदत डालो। तुम्हारा मक़ूला यह होना चाहिए कि 'स्वास्थ्य के लिए साग खाना आवश्यक है।' 'प्रत्येक दिन एक प्याज अथवा एक सेव खाना चाहिए' इस पुरानी कहावत के मुक़ाबले में यह कहावत कि 'प्रत्येक दिन साग खाना चाहिए' अधिक सच्ची है। हरे पदार्थों और सागों में हमारे स्वास्थ्य के लिए अति आवश्यक तत्व मौजूद हैं, जिनकी उपेक्षा करना रोग को मोल लेना है। यह पूर्णरूप से सिद्ध हो चुका है कि स्वस्थ्य शरीर के लिए विटैमीन और नमकों की (सफ़ाई रखने के लिए) प्रधान आवश्यकता है।

साग और कच्चे पदार्थों के न खाने से यह नतीजा होता है कि हमारी वह शक्ति नष्ट हो जाती है, जो उन तेजाबों को दूर करती है, जो रुधिर में तथा वृद्धावस्था में रतूबत (खराब माद्दा) पैदा करते हैं। रतूवत हमारे शारीरिक तथा मानसिक काम से पैदा होती है। ['हैल्थ और ऐफ्रीकेसी', पत्रिका के सितम्बर, सन् १६२७ ई० के अंक से उद्धृत]

आमिष भोजी (मांसाहारी) देश, यूरुप और अमरीका के अनुभवी डाक्टरों, प्रसिद्ध विज्ञान-वेत्ताओं तथा प्रवीण पाक-शास्त्र-विशारदों की पुस्तकों के उपरोक्त उदाहरणों को ध्यान-पूर्वक पढ़ने से, हमें आशा है, हमारे पाठकों को यह इच्छा अवश्य होगी कि हमें अपने खाद्य-पदार्थों में से अच्छे गुणकारी तथा पुष्टिकारक पदार्थों को अपनी व्यक्तिगत आवश्यकता को देखकर छांट लेने चाहिए।

परन्तु इस प्रकार के छटे हुए खाद्य-पदार्थों का सदुपयोग करने के लिए सूर्य-नमस्कार जैसी किसी व्यायाम-पद्धति का अनु-सरण करना अति आवश्यक है। यह स्मरण रखना चाहिए कि उपयुक्त भोजन तथा व्यायाम ही से स्वास्थ्य, सामर्थ्य तथा दीर्घायु की प्राप्ति होती है। इस सम्बन्ध में यूरुप और अमरीका के विद्वानों की सम्मतियों की परीक्षा करने से हमने जो कुछ परि-णाम निकाला है, उसका और जो कुछ हमने स्वयं अनुभव किया है, उसका सारांश हम यहाँ देते हैं—

(१) दूध

हमारे रोज़ाना के भोजन में थन से निकला हुआ ताज़ा गरम दूध (अग्नि का उबाला हुआ न हो) अच्छी अधिक मात्रा में

होना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य को भोजन के साथ कम से कम ऐसे दूध का एक गिलास तो अवश्य ही पीना चाहिए—यदि दूध गाय का हो, तो और अच्छा। दूध की किसी चीज़, जैसे दही, मक्खन और घी आदि का खाना भी गुणकारी है।

(२) फल

ताज़े फलों का खूब खाना बहुत लाभकारी होता है। स्वास्थ्य-वर्द्धक तथा पुष्टिकारक फल ये हैं—केला, नारंगी, संतरा, नीबू, मीठा नीबू, आम, नासपाती, अंगूर, अंजीर, किशमिश, सेब, अनन्नास, अमरूद, कटहर, ख़रबूज़ा, तरबूज़, खजूर, शफ़तालू अनार, सीताफल, रामफल, करौंदा आदि। गन्ना भी जब तब चूसा जा सकता है।

(३) मींगी

हमारे भोजन में कुछ थोड़ी सी मींगियाँ भी होनी चाहिए। पुष्टिकारी मींगियाँ इन फलों की होती हैं—बादाम, खजूर, नारियल, मूंगफली, अखरोट, इत्यादि। भूनी हुई नमकीन मींगी बड़ी स्वादिष्ट हो जाती है।

(४) साबत दाना

साबत चावल, साबत गेहूँ का दाना, साबत दाल वाले अनाज, जिनका छिलका न उतरा हो और साबत ही ज्वार, बाजरा और मक्का इत्यादि को अग्नि पर पकाकर खाना चाहिए। इनको या तो पानी में भिगोकर पकाना चाहिए या बिना पानी में भिगोये हुए ही। यह व्यक्तिगत पाचण-शक्ति पर निर्भर है।

(५) अंकुरित दाना

ऊपर नं० ४ में जिन अनाजों के दाने बतलाये गये हैं, उनको यदि पहिले अंकुरित हो जाने दिया जावे और तब खाया जावे, तो वे अधिक गुणकारी सिद्ध होंगे। इनके अतिरिक्त निम्नांकित अनाजों के दानों को भी अंकुरित करके खाना चाहिए—

मटर, चना, रमास या लोभिया, अरहर, मूंग, बड़ी सेम, बाकला, मसूर, उड़द, खुर्ती इत्यादि। इन चीज़ों की पिट्ठी बनाकर और उसमें ख़ूब स्वादिष्ट मसाला मिलाकर और कद्दूकस में कसे हुए गोले और प्याज को डालने से एक बड़ा स्वादिष्ट भोजन तैयार हो जाता है। इस प्रकार के भोजन में विटैमीन तथा खनिज नमकों की मात्रा अधिक होती है।

(६) हरी साग-भाजी

हरा (अग्नि पर पका न हो), मुलायम तथा पत्तेदार खाने योग्य कोई साग अथवा उनके फल आदि हों, अथवा फल और पत्ती दोनों जैसे अजमोद, नाड़ी का साग, काहू,भाटा, फूल गोभी, गांठ गोभी, मेथी, भिंडी, सेम, ककड़ी, तोरई. ज़मीकन्द, चने का साग, बथुआ, रामदाना, काशीफल इत्यादि। इनको यदि इस प्रकार खाया जाय, जसे (५) में बतलाया गया है, तो इनसे वे अंश निकलते हैं, जो स्वास्थ्य और सफ़ाई के लिए आवश्यक हैं।

नोट—पत्तेवाली भाजियां ही को खाना (बिना आग की पकी) चाहिए। क्योंकि गरम करने से इनकी विटैमीनें नष्ट हो जाती हैं।

(७) कंद-मूल-फल

कंद-मूल-फल जैसे आलू, मीठा आलू, मूली, गाजर, प्याज, लौकी, चचेड़ा, बैंगन, ककड़ा, एक प्रकार की सेम, बतिया कटहल, कच्चा केला इत्यादि, ये सब स्वास्थ्यवर्द्धक तथा पुष्टिकारक हैं। इनको अपने स्वाद तथा पाचण-शक्ति के अनुसार उबाल कर, सेक कर, भाप से पकाकर अथवा कच्चा खाना चाहिए।

(८) स्वादिष्ट पदार्थ

ताजे हरे, पत्तेदार, खाने योग्य साग अथवा उनके कंद और मूल, और प्याज इत्यादि में से किसी एक को पीसकर और उसमें उपरोक्त साबत भीगे हुए अथवा अंकुरित दानों को डालकर मसाला मिला देते हैं। इस प्रकार अनेक प्रकार के पदार्थ तैयार हो जाते हैं। ये पदार्थ भूख बढ़ाते हैं।

(९) फलों का काम देने वाली चीज़

ताज़े फल, जैसे अंगूर, आम, नारंगी और अंजीर इत्यादि साल में सब दिन नहीं मिलते हैं। परन्तु चावल, गैहूँ, चना, मटर आदि सदा मिल सकते हैं। इसलिए, इनसे पापड़, मुंगौरी, बरी आदि चीज़ें तैयार की जा सकती हैं, जो बहुत कुछ अंश में फलों का काम दे सकती हैं।

(१०) टमाटर

टमाटर, जिसको अंग्रेज़ी बैंगन भी कहते हैं, एक बहुत पुष्टिकारक साग है। परन्तु हमारे लोगों में इसका अधिक प्रचार नहीं है। इसके गुण को देखकर हमारी राय यह है कि इसे प्रत्येक मनुष्य को अपने भोजन का एक आवश्यक अंग बना लेना चाहिए।

क्योंकि इसमें विटैमीन तथा खनिज नमक आदि की मात्रा अधिक पाई जाती है और इसको कच्चा अथवा अग्नि पर पकाकर अनेक प्रकार से खा सकते हैं। इसका दूसरा गुण यह है कि यह बहुत सस्ता बिकता है और खूब फलता है। इसको नमकीन और मीठा, दोनों प्रकार से खा सकते हैं।

[यदि हम यहाँ पर सागों के खाने के भिन्न भिन्न प्रकार के तरीकों को बतलाने लगेंगे, तो पाक-शास्त्र में घुस जाएंगे और सूर्य-नमस्कार से दूर चले जाएंगे। पाक-शास्त्र के विषय में पढ़ने के लिए पाठकों को कुछ दिन इन्तजार करना चाहिए]

(११) अंडा

अंडे अथवा अंडे के भीतर के पीले भाग का दूध के बाद दूसरा नम्बर है। इसको वे लोग खा सकते हैं, जिनको इसके खाने में कोई एतराज़ नहीं है।

(१२) चीनी

अच्छी साफ़ चीनी को न खाना चाहिए। इसके न खाने से कोई हानि नहीं होती। और जब इसकी बहुत ही आवश्यकता आपड़े, तब इसको बहुत कम और कभी कभी ही खाना चाहिए। यदि इसके बजाय कच्ची खांड अथवा शहद खाया जावे, तो अधिक गुणकारी होता है।

स्वास्थ्य-प्राप्ति के लिए नियम

श्री० एफ़० सी० हैडक ने अपनी 'विचार-बल' नाम की पुस्तक में स्वास्थ्य प्राप्ति के लिए जो एक साधारण नियम बताया है, वह यहाँ उल्लेखनीय है—"प्रत्येक मनुष्य का भोजन उसकी शारीरिक अवस्था तथा उसके काम के अनुकूल होना चाहिए। जो जल

शुद्ध हो, उसको खूब पीना चाहिए। गहरी नींद जितनी देर तक ले सको उतनी देर तक लेनी चाहिए और ऊँघने को रोकना न चाहिए, किन्तु अच्छी हवा में सोकर उसे बढ़ाना चाहिए, जिससे खूब गहरी नींद आजाय। बहुत से आदमी बहुत ही कम जल पीते हैं। इसको बढ़ाना चाहिए। हमारे रहने के बहुत से कमरों की हवा इस प्रकार की है कि यदि उनमें किसी में एक बन-मानुष को रख दिया जाय, तो वह मर जायगा। समय पर नियमानुकूल काम करने की आदत अवश्य डालना चाहिए। पुट्ठों को कमजोर होने से रोकने तथा फैफड़ों के रुधिर को शक्तिवान बनाने के लिए अच्छा काफ़ी व्यायाम करना चाहिए।

इस प्रकरण को समाप्त करने के पूर्व हम अपने पाठकों को—विशेष रूप से उन नवयुवकों को, जिनको स्वास्थ्य सम्बन्धी बातों में अधिक उत्साह आता है, कुछ बातों में सावधान करना चाहते हैं। यह सदा के लिए ध्यान में रख लेना चाहिए कि एक व्यक्ति के अधिक शक्तिवान होने की परीक्षा यह कभी नहीं है कि वह अधिक भोजन करता है। कुछ लोगों को इस बात का बड़ा घमंड होता है कि हम बहुत जल्द खाना खा लेते हैं। इन दोनों प्रकार की कमजोरियों को दूर कर देना चाहिए। इनके कारण पाचण-शक्ति कम हो जाती है, जिससे बीमारी पैदा हो जाती है। यह स्मरण रखना चाहिए कि अधिकतर बीमारियां यातो अधिक भोजन करने से होती हैं अथवा जल्द भोजन करने से।

यदि तुमको यह मालूम पड़े कि तुम्हारा जिगर अथवा पेट अपना काम ठीक तौर से नहीं कर रहा है, तो ऐसी दशा में औषधियों का सेवन मत करो, किन्तु उपवास करो, जिससे तुम्हारे पेट अथवा जिगर का बोझ हलका होवे।

इस सम्बन्ध में डाक्टर युजेन। क्रिस्टेन, एफ० एस० डी०, के शब्द यहाँ उल्लेखनीय हैं—"जल्दी भोजन करना, अधिक मात्रा में खाना, भोजन देर से मिलने पर क्रोध करना, ये सब वर्जित हैं। इनके अतिरिक्त सभ्य तथा सुशिक्षित लोगों को यह एक और आदत पड़ गई है कि वे भोजन को बिना अच्छी तरह से चबाये हुए ही निगल जाते हैं। यह याद रहे कि पेट और अँतड़ियों की बीमारी के मुख्य कारणों में से यह भी एक कारण है"। ['१०० वर्ष तक कैसे जीवित रह सकते हैं', नाम की पुस्तक से उद्धृत]

एक विद्वान का कहना है कि बीमारी पैदा होने का आम सबब अधिक मात्रा में भोजन करना है। इसकी सब से बुरी हालत का नाम क़ब्ज़ है, जो ख़राब खाने-पीने से और भी बढ़ जाता है। यह अच्छे खाने-पीने से कम होजाता और बिल्कुल भी जाता रहता है। 'आज कल के बहुत से भोजन अस्वाभाविक हैं'।

उपवास

हम कैसी भी सावधानी से अपने उपयुक्त खाने-पीने के पदार्थों को क्यों न छाँटें और उनको कैसी भी उचित मात्रा में क्यों न खायँ, परन्तु कुछ न कुछ अवाञ्छनीय तथा अनावश्यक खाने-पीने के पदार्थ हमारे पेट में पहुँच ही जाते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि रोग पैदा हो जाता है। इसका कारण कुछ तो हमारी अज्ञानता और कुछ हमारी आदत है। इससे बचने के लिए उपवास का करना अति आवश्यक है।

उपवास करने का सर्वोत्तम नियम यह है कि तुमको जब भूख न लगे, तब तुमको उपवास कर डालना चाहिए। भूख का न लगना प्रकृति की ओर से यह संबोधन है कि अब और भोजन न करना चाहिए। सप्ताह अथवा पखवारे (१५ दिन) में किसी एक दिन उपवास करलेने का नियम करना बहुत अच्छा है।

बहुत से धर्मों में भी कुछ दिन उपवास करने के लिए नियत कर दिये हैं, जैसे हिन्दुओं में एकादशी आदि अनेक उपवास नियत कर दिये हैं, मुसलमानों में रोज़ा (साल में ३० दिन का उपवास) इत्यादि और ईसाइयों में लैंट (साल में ४० दिन का उपवास।

उपवास पूरे दिन भर कुछ न खाकर भी होता है और कुछ खाकर भी। पूरे दिन के उपवास में सिवाय जल के और कुछ नहीं खाया जाता। डाक्टर मैक़फ़ैडन का कहना है कि कुछ पदार्थ ऐसे भी हैं, जिनको खाने से उपवास का महत्व कम नहीं होता, जैसे—

(१) पूरे दिन उपवास करने के बजाय बहुत से लोग दिन में कुछ थोड़ा सा नारंगी का रस अथवा दो या तीन नारंगियाँ अथवा एक नारंगी इस भोजन के समय पर और एक उस भोजन के समय खा लेते हैं। यदि खाने की नली (जिसमें होकर गले से पेट में खाना जाता है) की सफ़ाई करनी हो, तो नारंगी के छिलके के अंदर के सफ़ेद भाग को खा लेना चाहिए। मैंने ऐसे लोग भी देखे हैं, जिन्होंने नारंगी के छिलके और बीजों को भी खाया है और उससे उनको लाभ पहुँचा है। इनके खाने से खाने की नली चैतन्य हो जाती है और उसके पुट्ठों का वह काम भी बढ़ जाता है, जिसके द्वारा खाना आगे को बढ़ता है।

(२) ऐसा भी होता है कि दिन में एक एक गिलास दूध तीन बार पीते हैं। दूध पीने का असर यह होता है कि उससे पेट और खाने की नली साफ़ हो जाती है और उपवास का जो कष्ट होता है, वह कम हो जाता है।

(३) उपवास में शहद खा लेने से भी आराम मिल जाता है। जल में शहद मिला कर पीने से जल मीठा लगने लगता है। इससे भूख जाती रहती है और बल बढ़ता है। उपवास में शहद के साथ जल पीने से सिवाय इसके कि तुम्हारा वज़न कम हो जाय, तुमको उपवास की कठिनाई तनिक भी अनुभव नहीं हो सकती।

'फ़िज़ीकल कलचर' नाम के पत्र के अक्टूबर, सन् १९२६ ई० के अंक में श्री० बरनार मैकफ़ैडन ने लिखा है, "जो लोग अधिक मात्रा में भोजन करते हैं, उनकी अकाल मृत्यु होती है। उपवास करना एक बहुत बलवर्द्धक औषधि है। भोजन बस उसी समय करना चाहिए जिस समय भूख लगे। यदि तुम अपने पूर्वजों को सी बड़ी बड़ी अवस्थाएं चाहते हो, तो तुमको नियम-पूर्वक उपवास करना चाहिए।

विज्ञान द्वारा उपवास का समर्थन

श्रीयुत जोन हैडन का विचार—उपवास से रोग की चिकित्सा इस प्रकार हो जाती है, जैसे किसी जादू से। उपवास वास्तव में मनुष्य-जाति के पास एक बड़ी विचित्र चिकित्सा है। यह ऐसी चिकित्सा है, जिसके बल पर मृत्यु से भी हाथ मिलाया जा सकता है। अर्थात—उपवास-चिकित्सा के सन्मुख मृत्यु भी दूर भागती है।

डाक्टर मोरगुलिस ने यह सिद्ध करके दिखला दिया है कि उपवास करना हानिकारक नहीं है। आपने बहुत मनुष्य तथा जानवरों पर परीक्षा करके देखा है कि कुछ दिनों के लगातार उपवास से उस समय तक, जब तक शरीर का बोझ १० से १५

फ़ी सदी तक कम होता है, तनिक भी हानि नहीं होती, किन्तु अति अधिक लाभ पहुँचता है।

डाक्टर मोरगुलिस इस नतीजे पर पहुँचा है कि उपवास करने से शरीर को एक नई शक्ति प्राप्त होती है। और उसका यह भी कहना है कि वह उपवास, जो निराहार होता है, सब से कम हानिकारक है। ['फ़िज़कल कल्चर,' जुलाई, सन् १९२१ ई०]

व्यसन

अब हम उन पदार्थों के विषय में लिखते हैं,जिनकी लोगों को आदत (व्यसन) पड़ जाती है और जो उनके स्वास्थ्य को बिगाड़ देते हैं। ये पदार्थ चाय, कहवा तथा कोको इत्यादि हैं। विज्ञान तथा अनुभव द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि इन पदार्थों की मीठी सुगंधि तथा स्वाद इनके विषैले अंशों के सामने दब जाते हैं। यदि इन पदार्थों का बहुत समय तक प्रयोग किया जावे, तो उससे पाचण-शक्ति तथा समस्त तंतु-क्रम को अवश्य हानि पहुँचती है। और उन अनेक प्रकार की पुरानी बीमारियों की उत्पत्ति होती है, जो हमको आजकल दुखित कर रही हैं और सम्भव है कि उनको हमारी भावी संतान भी भोगे।

इन उत्तेजक पदार्थों के व्यसन से छुटकारा पाने के लिए श्री० एफ़० सी० हैडक की 'विचार-बल' (Power of Will) नाम की अंग्रेज़ी पुस्तक को पढ़ना चाहिए। आप अपनी इस पुस्तक में एक स्थान पर कहते हैं, "वह मनुष्य दुर्व्यसनों को नष्ट कर सकता है, जो वास्तव में इनको अपने क़ाबू में लाने की इच्छा करता है।"

दुर्व्यसनों का इलाज यह है कि उनके भोगने की इच्छा का नाश कर दिया जाय। इच्छा पहिले होती है और उसके बाद कर्म। इच्छा होने पर ध्यान आकर्षित हो जाता है। इच्छा बनी

रहे और कर्म न किया जावे, इससे कुछ भी लाभ नहीं होता। क्योंकि इच्छा के विना नाश के दुर्व्यसन का नाश नहीं होता। "यदि तुम में अपना सुधार करने के लिए मनुष्यत्व शेष नहीं रह गया है, तो तुमको किसी वैद्य की शरण लेनी चाहिए, जो तुम्हारा इलाज करे। और यदि इससे भी कुछ काम न बने, तो यह निश्चय है कि तुम अपने दुर्व्यसनों के सदा ग़ुलाम बने रहोगे।"

अंतिम प्रबोधन

प्रिय पाठको, यह स्मरण रक्खो कि हमारा उद्देश्य स्वास्थ्य, सामर्थ्य तथा दीर्घायु प्राप्त करना है, न कि बड़े बड़े उभड़े हुए पुट्ठे प्राप्त करना। इसलिए, हमारा यह कहना है कि तुमको सूर्य नमस्कारें उतनी ही करनी चाहिए, जितनी तुम्हारे लिए उपयुक्त हों और इसी प्रकार वैसा और उतनाही भोजन तथा आराम करना चाहिए, जैसा और जितना तुम्हारे लिए आवश्यक है।

तुमको अपने काम के अनुसार आराम, सोने के अनुसार जागना तथा भोजन के अनुसार व्यायाम करना चाहिए। बस, यही एक सब से बड़ा उपदेश है।

संस्कृत भाषा में एक कहावत है, कि "लोका भिन्नमतयः" अर्थात्—मनुष्य एक दूसरे से स्वभाव में नहीं मिलते हैं। इसलिए, प्रत्येक मनुष्य को अपने स्वभाव के अनुसार काम और आराम तथा भोजन और व्यायाम आदि को व्यवस्था करनी चाहिए।

भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं—

युक्ताहारविहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

[भगवद्गीता—६। १]

अर्थात्—"यह दुखों का नाश करने वाला योग तो यथा-योग्य आहार और विहार करने वाले तथा कर्मों में यथा-योग्य चेष्टा करने वाले और यथा-योग्य शयन करने वाले तथा जागने वाले ही का सिद्ध होता है।"

इसलिए, यदि उपयुक्त खाद्य-पदार्थों को भोजन के लिए छाँट कर जब-तब उपवास करने के साथ साथ नियम रूप से सूर्य-नमस्कार को किया जायगा, तो इसी पीढ़ी में स्वास्थ्य, बल, पराक्रम तथा शारीरिक आकार-प्रकार में इतनी उन्नति होगी, जिसे देख कर आश्चर्य होगा।

तेरहवाँ प्रकरण

—*❀*—

स्वास्थ्य का मूल्य

घरों के कष्टों को जाने दीजिये। आजकल बीमारी तथा शारीरिक दुर्बलता के कारण कला-कौशल तथा वाणिज्य-व्यापार को जो प्रति वर्ष हानि हो रही है, वह अकथनीय है। अब समय आगया है कि हमें इस जातीय पतन तथा आर्थिक हीनता को दूर करने के लिए कुछ प्रचण्ड उद्योग गम्भीरता-पूर्वक करना चाहिए। अब तक इस सम्बन्ध में अनेक प्रकार के साधन तथा उपाय ग्रहण किये जा चुके हैं। परन्तु सफलता किसी से भी प्राप्त नहीं हुई है।

इसलिए, किसी प्रकार के वैज्ञानिक तथा विधि-विहित शारीरिक व्यायाम का प्रचार सर्वसाधारण में साधारणतः और स्कूल और कालिजों के विद्यार्थियों में विशेषतः होना चाहिए।

इस प्रकार की व्यायाम-पद्धति को विश्वव्यापी और आसान बनाने के लिए निम्नांकित बातों की पूर्ति का होना आवश्यक है—

(१) उसको कोई भी अकेला आदमी—स्त्री अथवा पुरुष, युवा अथवा वृद्ध—कर सके।

(२) उसको अकेला भी कर लिया जासके और ड्रिल की भाँति मिल कर भी।

(३) उसको कहीं भी—चाहे कमरे के अन्दर अथवा खुली जगह में—किया जासके।

(४) उसको दिन में अथवा रात में किसी समय किया जासके।

(५) वह प्रत्येक ऋतु के लिए उपयुक्त हो।

(६) उसके करने में किसी साथी अथवा सामान की आवश्यकता न पड़े।

(७) उसके लिए पहले से किसी ख़ास तैयारी अथवा अभ्यास की आवश्यकता न होवे।

(८) उसमें कुछ ख़र्च न पड़े।

(९) वह सब प्रकार से पूर्ण होवे।

चूंकि इन उपरोक्त बातों की पूर्ति सूर्य-नमस्कार के अतिरिक्त और किसी व्यायाम-पद्धति से नहीं हो सकती है और इसको नियमानुकूल करने से अगणित लाभ प्राप्त होता है, इसलिए, हम अपना पूरा जोर देकर यह सिफ़ारिश करते हैं कि सूर्य-नमस्कार-व्यायाम को हिन्दुस्तान के सब स्कूल और कालिजों में अनिवार्य कर देना चाहिए।

चौदहवाँ प्रकरण



उपसंहार

इस पुस्तक को समाप्त करने के पूर्व हम अपने पाठकों के विचारार्थ डाक्टर राधाकृष्ण, एम० बी०, बी० एस० के 'जीवन की आशा' (Expectation of Life) शीर्षक लेख का, जो लाहौर की एक मासिकपत्रिका 'वैदिक मैगेज़ीन' के सितम्बर, सन् १९२७ ई० के अंक में प्रकाशित हुआ था, कुछ अंश यहाँ उद्धृत करते हैं—

हिन्दुस्तान में जीवन बढ़ाने के उपाय

जीवन बढ़ाने के उपायों को बतलाने के पूर्व यह विचार लेना उचित है, आया जीवन की वृद्धि अथवा दीर्घायु वास्तव में आवश्यक है या नहीं। डाक्टर सिलवैस्टर ग्राहम का कथन है कि यदि जीवन की वृद्धि की जायगी, तो उसकी शक्ति का ह्रास हो जायगा। क्योंकि ये दोनों एक दूसरे के विरोधी हैं। परन्तु इस बात को आजकल के शरीर-शास्त्र के विद्वानों ने भली भाँति सिद्ध कर दिया है कि यदि उपयुक्त साधन ग्रहण किये जावें, तो जीवन दोनों ही प्रकार बढ़ाया जा सकता है।

जीवन की वृद्धि इसलिए भी आवश्यक है, क्योंकि—

(१) वृद्धावस्था में एक अनूठा आनन्द प्राप्त होता है। स्वस्थ वृद्धावस्था वास्तव में एक सर्वोपरि सुख है।

(२) देश के हानि-लाभ के विचार से एक ८० वर्ष का बुद्धिमान मनुष्य देश की एक बहुमूल्य सम्पत्ति है। क्योंकि वृद्ध मनुष्य अपने जीवन के अनुभव और लोभादि विषयों से रहित होने के कारण परामर्शदाता तथा न्यायाधीश का काम करता है। वह जब ४० वर्ष का था तब की अपेक्षा वह अब अधिक काम का होता है और वह अकेला ४०, ४० वर्ष के एक हो स्थिति के दो आदमियों से अधिक मूल्यवान होता है। यह बिलकुल सत्य है कि स्वस्थ वृद्ध मनुष्यों को ५० वर्ष के उपरान्त की मृत्यु देश के लिए एक आपत्ति है। जीवन-वृद्धि (दीर्घायु) के साथ साथ बुद्धि की रक्षा और काम करने की शक्ति भी होनी चाहिए। इनकी प्राप्ति के लिए विद्वानों ने निम्नांकित उपाय बताए हैं—

व्यक्तियों के लिए उपाय

(१) ब्रह्मचर्य्य और विवाह-संस्कार का सुधार।

(२) शारीरिक बल और परिश्रम की प्रतिष्ठा।

(३) सादा तथा स्वस्थ जीवन।

(४) स्वच्छता का भाव।

(५) मानसिक स्वास्थ्य, अर्थात् सहिष्णुता और उत्कृष्ट आशा।

जातियों के लिए उपाय

(६) जच्चा-बच्चा की कुशल।

(७) स्वच्छता और छूत की बीमारियों को रोक।

(८) शिक्षा सम्बन्धी साधन।

"यहां पर केवल उपायों के नामही देदिये गये हैं। यदि इनमें से प्रत्येक का विस्तार-पूर्वक वर्णन किया जावे, तो प्रत्येक के ऊपर एक स्वतंत्र लेख बन सकता है। हम यहां पर संक्षेप में दीर्घायु-प्राप्ति के केवल कुछ थोड़े से सुप्रसिद्ध कार्य-क्रमों का वर्णन करते हैं।

अमरीका देश की 'दीर्घायु समिति' की ओर से, जिसमें अमरीका के १०० चुने हुए डाक्टर हैं, जो निम्न लिखित १५ स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियम प्रत्येक मनुष्य के लिए बताए गये हैं, वे सर्वोत्तम हैं—

(अ) वायु—

(१) अपने रहने के प्रत्येक कमरे को हवादार बनाओ।

(२) हलके, ढीले और सूराख़दार कपड़े पहनो।

(३) ड्रिल, बाहर काम करना और मन-बहलाव।

(४) जहाँ तक हो सके, वहाँ तक बाहर सोओ।

(५) गहरा सांस लो अर्थात् प्राणायाम करो।

(ब) भोजन—

(६) कम और हलका भोजन करो।

(७) मांस और अंडों को कम खाओ।

(८) कुछ सख्त, कुछ भारी और कुछ कच्चे पदार्थ खाओ।

(९) धीरे धीरे चबा कर खाओ।

(स) विष—

(१०) पाख़ाना रोज़ाना पूरे तौर से साफ़ हो।

(११) सीधे होकर चलो, बैठो और खड़े हो।

(१२) ज़हर और दूषित पदार्थों को शरीर में न आने दो।

(१३) डाढ़, दाँत, मसूड़ों और जीभ को साफ़ रक्खो।

(द) स्फूर्ति—

(१४) अधिक काम करने, अधिक आराम करने, अधिक खेलने तथा अधिक सोने से बचो।

(१५) शान्ति-पूर्वक रहो।

इन नियमों की विशेषता यह है कि ये —

(१) बनावटी नहीं हैं, किन्तु स्वाभाविक हैं।

(२) कठिन नहीं हैं, किन्तु सरल हैं।

इन नियमों के पालन करने से—

(१) ह्रास तथा मृत्यु देर से होती है।

(२) व्यक्तिगत तथा जातिगत ह्रास नहीं होने पाता, और

(३) ये रोग को रोकते हैं।

पाठकों को उपरोक्त सब विषयों को ध्यान-पूर्वक पढ़ने से अब यह स्पष्ट ज्ञात होगया होगा कि हमारी सूर्य-नमस्कार की क्रिया बहुत स्वाभाविक और सरल है। और जब इसे युक्ताहार-विहार तथा उपवास के साथ किया जावेगा, तो इस उपरोक्त उद्धरण के अन्तिम भाग में जो फल दिये हुए हैं, वे सब फल इससे प्राप्त होंगे।

अन्त में हम अपने पाठकों को—स्त्री-पुरुष, युवा-वृद्ध, अमीर-गरीब तथा सबल-दुर्बल—सबको निश्चय रूप से यह विश्वास दिलाते हैं कि यदि सूर्य-नमस्कारों को विश्वास-पूर्वक उपरोक्त नियमों का पालन करते हुए तथा युक्ताहार-विहार और उपवास के साथ किया जावेगा, तो इनसे केवल व्यक्तिगत ही नहीं, किन्तु राष्ट्र भर को स्वास्थ्य, सामर्थ्य तथा दीर्घायु की प्राप्ति होगी।

शुक्ल यजुर्वेद वालों के लिये वैदिक तथा बीज-मंत्रों के साथ सूर्य-नमस्कार करने की विधि

संकल्प नमस्काराः

आचम्य प्राणानायम्य ॥ तिथिर्विष्णुस्तथा वारं नक्षत्रं विष्णुरेवच । योगश्च करणं विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत् ॥ अद्य पूर्वोक्चरितैवंगुण विशेषेण विशिष्टायां शुभ पुण्य तिथौ ममात्मनः श्रुति स्मृति पुराणोक्त फल प्राप्त्यर्थं श्री सवितृ सूर्य नारायण देवता प्रीत्यर्थं च श्री हंसकल्पेनोक्त विधिना यथाशक्ति नमस्काराख्यं कर्म करिष्ये ।

अथ ध्यानम्—ध्येयः सदा सवितृ मंडल मध्यवर्ती ।
नारायणः सरसि जासन संनिविष्टः ॥
केयूरवान् मकर कुंडलवान् किरीटी ।
हारी हिरण्मय वपुर्धृत शंख चक्रः ॥ १ ॥

(१) ॐ ह्रां हंसः शुचिषत् ॐ ह्रां मित्राय नमः ।
(२) ॐ ह्रीं वसुरन्तरिक्षसत् ॐ ह्रीं रवये नमः ।
(३) ॐ ह्रूं होता वेदिषत् ॐ ह्रूं सूर्याय नमः ।
(४) ॐ ह्रैं अतिथिर्दुरोण सत् ॐ ह्रैं भानवे नमः ।
(५) ॐ ह्रौं नृषत ॐ ह्रौं खगाय नमः ।
(६) ॐ ह्रः वरसत् ॐ ह्रः पूष्णे नमः ।

(७) ॐ ह्रां ऋतसत ॐ ह्रां हिरण्यगर्भाय नमः ।

(८) ॐ ह्रीं व्योमसत् ॐ ह्रीं मरोचये नमः ।

(९) ॐ ह्रूं अब्जागोजाः ॐ ह्रूं आदित्याय नमः ।

(१०) ॐ ह्रैं ऋतजाऽद्रिजाः ॐ ह्रैं सवित्रे नमः ।

(११) ॐ ह्रौं ऋतम् ॐ ह्रौं अर्काय नमः ।

(१२) ॐ ह्रः वृहत् ॐ ह्रः भास्कराय नमः ।

(१३) ॐ ह्रां ह्रीं हंसः शुचिषद्वसुरंतरिक्षसत् ॐ ह्रां ह्रीं मित्र रविभ्यां नमः ।

(१४) ॐ ह्रूं ह्रैं होता वेदषदतिथि दुरोणसत् ॐ ह्रूं ह्रैं सूर्य भानुभ्यां नमः ।

(१५) ॐ ह्रौं ह्रः नृषद्वरसत् ॐ ह्रौं ह्रः खगपूषभ्यां नमः ।

(१६) ॐ ह्रां ह्रीं ऋतसव्द्योमसत् ॐ ह्रां ह्रीं हिरण्यगर्भमरी-चिभ्यां नमः ।

(१७) ॐ ह्रूं ह्रैं अब्जा गोजाऽऋतुजाऽअद्रिजाः ॐ ह्रूं ह्रैं आदित्यसवितृभ्यां नमः ।

(१८) ॐ ह्रौं ह्रः ऋतं वृहत् ॐ ह्रौं ह्रः अर्कभास्कराभ्यां नमः ।

(१९) ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिष दतिथिर्दुरोणसत् ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं मित्ररविसूर्यभा-नुभ्यो नमः ।

(२०) ॐ ह्रौं ह्रः ह्रां ह्रीं नृषद्वरसदृतसव्द्योमसत् ॐ ह्रौं ह्रः ह्रां ह्रीं खगपूषहिरण्यगर्भमरीचिभ्यो नमः ।

(२१) ॐ ह्रूँ ह्रैं ह्रौं ह्रः अब्जा गोजाऽऋतुजाऽअद्रिजाऽऋत-म्बृहत् ॐ ह्रूँ ह्रैं ह्रौं ह्रः आदित्यसवित्रर्कभास्करेभ्यो नमः ।

(२२)-(२४) ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूँ ह्रैं ह्रौं ह्रः हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोतावेदिषदतिथिर्दुरोणसत् । नृषद्वरसदृतसव्द्योमसदब्जा गोजाऽऋतजाऽअद्रिजाऽ ऋतम्बृहत् ॥ १ ॥ ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूँ ह्रैं ह्रौं ह्रः ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूँ ह्रैं ह्रौं ह्रः मित्ररविसूर्यभानुखगपूषहिरण्यगर्भमरीच्यादित्यसवित्रर्कभास्करेभ्यो नमः ॥ इति त्रिः ॥

(२५) ॐ श्रीसवित्रे सूर्यनारायणाय नमः ।

आदित्यस्य नमस्कारान् ये कुर्वंति दिने दिने ।
जन्मान्तरसहस्रेषु दारिद्र्यं नोपजायते ॥१॥
नमो धर्मविधानाय नमस्ते कृतसाक्षिणे ।
नमः प्रत्यक्षदेवाय भास्कराय नमोनमः ॥२॥
अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनं ।
सूर्यपादोदकं तीर्थं जठरे धारयाम्यहम् ॥३॥

(इति तीर्थं गृहीत्वाचमनं कुर्यात्)

ऋग्वेद तथा कृष्ण यजुर्वेद वालों के लिए वैदिक तथा बीज-मंत्रों के साथ सूर्य-नमस्कार करने की विधि

तृचाकल्पनमस्काराः

आचम्य प्राणानायम्य । ममात्मनः श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफल-प्राप्त्यर्थं श्रीसवितृसूर्यनारायणप्रीत्यर्थं च तृचाकल्पविधिना नमस्काराख्यं कर्म करिष्ये । (पात्रे जलं गृहीत्वा तन्मध्ये गंधाक्षतपुष्पाणि क्षिप्त्वा)

ध्येयः सदा सवितृमंडलमध्यवर्ती ।
नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः ॥
केयूरवान् मकरकुंडलवान् किरीटी ।
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशंखचक्रः ॥ (इति ध्यात्वा)

(१) ॐ ह्रां उद्यन्नद्य मित्रमहः ह्रां ॐ मित्राय नमः ।
(२) ॐ ह्रीं आरोहन्नुत्तरां दिवं ह्रीं ॐ रवये नमः ।
(३) ॐ ह्रूँ हृद्रोगं मम सूर्य ह्रूँ ॐ सूर्याय नमः ।
(४) ॐ ह्रैं हरिमाणं च नाशय ह्रैं ॐ भानवे नमः ।
(५) ॐ ह्रौं शुकेषु मे हरिमाणं ह्रौं ॐ खगाय नमः ।
(६) ॐ ह्रः रोपणाकासु दध्मसि ह्रः ॐ पूष्णे नमः ।
(७) ॐ ह्रां अथो हारिद्रवेषु मे ह्रां ॐ हिरण्यगर्भाय नमः ।

(८) ॐ ह्रीं हरिमाणं निदध्मसि ह्रीं ॐ मरीचये नमः ।

(९) ॐ ह्रूँ उदगादयमादित्यः ह्रूँ ॐ आदित्याय नमः ।

(१०) ॐ ह्रैं विश्वेन सहसा सह ह्रैं ॐ सवित्रे नमः ।

(११) ॐ ह्रौं द्विषंतं मह्यं रंधयन् ह्रौं ॐ अर्काय नमः ।

(१२) ॐ ह्रः मो अहं द्विषते रधं ह्रः ॐ भास्कराय नमः ।

(१३) ॐ ह्रां ह्रीं उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवं ह्रां ह्रीं ॐ मित्ररविभ्यां नमः ।

(१४) ॐ ह्रूँ ह्रैं हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ह्रूँ ह्रैं ॐ सूर्यभानुभ्यां नमः ।

(१५) ॐ ह्रौं ह्रः शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि ह्रौं ह्रः ॐ खगपूषभ्यां नमः ।

(१६) ॐ ह्रां ह्रीं अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं निदध्मसि ह्रां ह्रीं ॐ हिरण्यगर्भमरीचिभ्यां नमः ।

(१७) ॐ ह्रूँ ह्रैं उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह ह्रूँ ह्रैं ॐ आदित्यसवितृभ्यां नमः ।

(१८) ॐ ह्रौं ह्रः द्विषंतं मह्यं रंधयन्मो अहं द्विषते रधं ह्रौं ह्रः ॐ अर्कभास्कराभ्यां नमः ।

(१९) ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूँ ह्रैं उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवं हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ह्रां ह्रीं ह्रूँ ह्रैं ॐ मित्ररविसूर्यभानुभ्यो नमः ।

(२०) ॐ ह्रौं ह्रः ह्रां ह्रीं शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं निदध्मसि ह्रौं ह्रः ह्रां ह्रीं ॐ खगपूषहिरण्यगर्भमरीचिभ्यो नमः ।

(२१) ॐ हूँ हैं हौं हः उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह द्विषंतं मह्यं रंधयन्मो अहं द्विषते रधं हूं हैं हौं हः ॐ आदित्यसवित्रर्कभास्करेभ्यो नमः ।

(२२-२४) ॐ हां हीं हूँ हैं हौं हः हां हीं हूँ हैं हौं हः उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवं हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय । शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं निदध्मसि उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह द्विषंतं मह्यं रंधयन्मो अहं द्विषते रधम् ॥ हां हीं हूँ हैं हौं हः हां हीं हूँ हैं हौं हः ॐ मित्ररविसूर्यभानुखगपूषहिरण्यगर्भमरीच्यादित्यसवित्रर्कभास्करेभ्यो नमः ॥ इति त्रिः ॥

(२५) ॐ श्रीसवित्रे सूर्यनारायणाय नमः ।
आदित्यस्य नमस्कारान् ये कुर्वंति दिने दिने ।
जन्मान्तरसहस्रेषु दारिद्र्यं नोपजायते ॥१ ॥
नमो धर्मविधानाय नमस्ते कृतसाक्षिणे ।
नमः प्रत्यक्षदेवाय भास्कराय नमोनमः ॥२॥
अनेन तृचाकल्पनमस्काराख्येन कर्मणा भगवान् ।
श्रीसवितृसूर्यनारायणः प्रीयताम् । न मम ।
अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम् ।
सूर्यपादोदकं तीर्थं जठरे धारयाम्यहम् ॥३॥

(इति तीर्थं गृहीत्वाचमनं कुर्यात्)

———

